मानव मन्दिर

वैसाखी विशेषांक

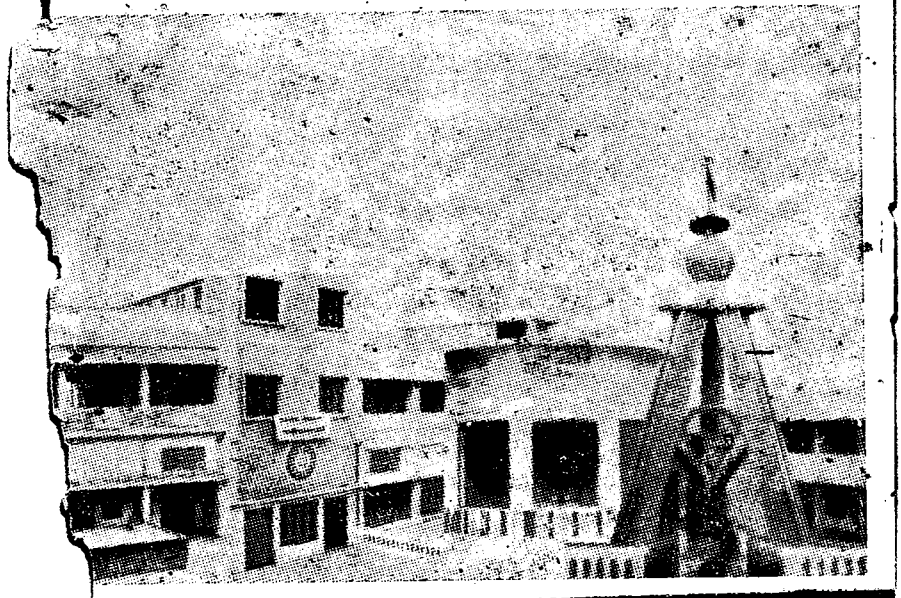

फकीर लायब्रेरी चैरीटेबल ट्रस्ट

FORM I

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur.
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of publication	Monthly
Printer's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavata Mandir, Hoshiarpur.
Editor's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavata Mandir, Sutehti Road, Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the total	Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Dr. Paras Ram Aggarwal hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 10-6 [illegible] Signature of Publisher

Printed and Published by : Dr. Paras Ram at
Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur
for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

मानवता मन्दिर में अगला मासिक सत्संग
को होगा।

महर्षि शिवव्रतलाल वर्मन

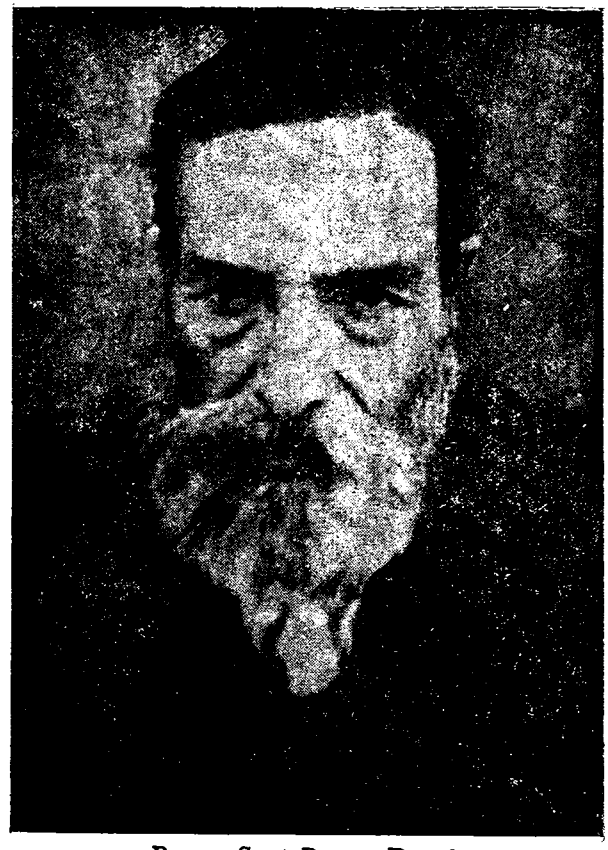

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

Param Sant Manav Dayal

Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

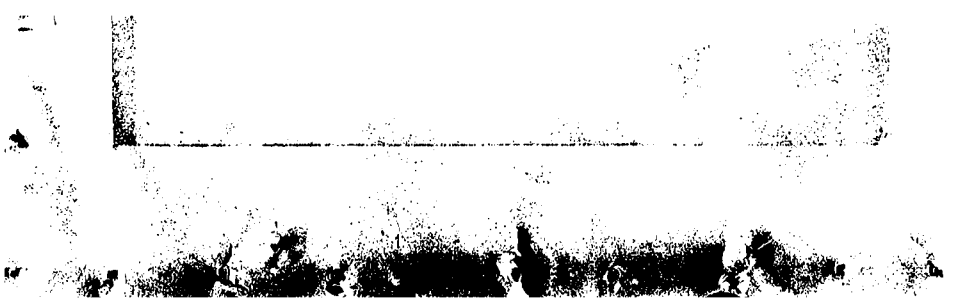

मासिक—

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

BE MAN
मनुष्य बनो

सम्पादक :
डा० परस राम अग्रवाल

वर्ष 17 | बुधवार, 10 अप्रैल 1991 | संख्या 12

मध्यमार्गी सदा सुखी

हज़ूर दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज

"मध्यमार्गी सदा सुखी" अर्थात् बीच की राह से चलने वाला और ममता का ध्यान रखने वाला सदा सुखी रहता है और उसके जीवन के आदेश की पूर्ति भी आसानी से होती है। यह सन्तों का उपदेश है। यह बौद्धों की शिक्षा है। दायें-बायें से बचो। केवल बीच ही की राह पर चलो और गुरु की कृपा से तुम्हारा कल्याण ही कल्याण होगा।

इस मध्यमार्ग को सहज पन्थ भी कहते हैं। इसके साधन से सहज समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाती है। जो इस मार्ग पर नहीं चलते, वे दुःखी रहते हैं। कबीर साहिब की वाणी है :—

सहज सहज सब कोई कहै, सहज न जाने कोय।
जा सहजे साहिब मिलै, सहज कहावे सोय॥

बच्चों के व्यवहार से सच्चाई और सहज अवस्था का उपदेश लो। माँ की छाती से होंठ लगे हुए हैं, दूध सहज रीति से निकल कर पेट में जाता है और उसीसे बालक के शरीर का पोषण होता है। दांत गढ़ाओ, लहू निकल आयेगा, जो बच्चे के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होगा। दूध तो सहज रीति से ही मिलेगा। खींच-तान करने से तो रक्त ही निकलेगा।

"सहज मिले तो दूध सम, मांगा मिले सो पानी।
कहें कबीर वह रक्त सम, जा में खींचातानी॥

इधर पानी है, नीचे तलछट। सार वस्तु तो केवल बीच में ही है। हंस का ढंग सीखो। इधर पानी को छोड़ो, उधर तलछट से मुंह मोड़ो और चोंच को बीच में डुबाओ। दूध पी लो, पानी और तलछट को छोड़ दो।

जीवन का प्रवाह सहज-सहज में ही है। कोई जल्दी-२ सयाना (युवा) नहीं होता। सहज रीति से काम सुगमता से होता है। व्यर्थ हाथ-पाँव मारने से परिणाम बुरा निकलता है।

"काहे को कलपत फिरै, दुःखी होत बेकार।
सहजे सहजे हो गया, जो रचिया कर्तार॥

लोक का काम हो या परलोक का, सब में समता का ध्यान रखना ज़रूरी है। इसमें न तो खींचातानी का डर है न निराशा तथा भय का। न तो संसार से भागो, न संसार में पूरी तरह से फँसो। जो बहुत जल्दी चलता है, उसके थक जाने का डर रहता है, परन्तु जो वस्तु धीरे-२ चलता है, उसके ठिकाने तक पहुँचने में खटका रहता है। सम्भव है कि दिन डूब जाये और वह ठिकाने तक न पहुँच सके। इसलिये काम करने में समता का ध्यान रखना बहुत ज़रूरी है। हमेशा बीच की राह पर चलो।

धर्म और अधर्म किसीसे भी गहरा सम्बन्ध मत रखो। न बहुत बोलो न बिलकुल चुप रहो। मध्यमार्गी बनो, फिर तुम्हारा काम अपने आप होता रहेगा :—

हिन्दु कहैं तो है नहीं, मुसलमान भी नाँह।
पाँच तत्त्व का पूतला, गैबी खेले माँह॥
अति का भला न बोलना,अति की भली न चुप।
अति का भला न बरसना,अति की भली न चुप॥

लोग प्रायः हमसे बार-२ पूछते हैं कि कौन-सा मार्ग ग्रहण किया जाये, जिसकी सहायता से साक्षात्कार जल्द हो। हमारा उत्तर यह होता है कि वे लोग बिचली (मध्यमार्ग) राह पर चलें। परन्तु बहुत कम लोग इस उत्तर को समझते हैं। प्रश्न यह है कि आत्मिक दृष्टि से यह सहज मार्ग क्या है? इसका उत्तर यह है कि यह सुरत-शब्द योग और सुरत-शब्द मार्ग है। संसार में जितने भी योग और साधन प्रचलित हैं, वे कठिन, हानिकारक तथा अपूर्ण हैं। मध्य का मार्ग सहज, सुगम तथा पूर्ण है। यह सब साधनों तथा अभ्यास का सार या इत्र समझा जाता है। मुसलमान सूफी इस सहज मार्ग को सुलतानुल अज़कार अर्थात्, 'ज़िकों का बादशाह' कहते हैं। यह उसकी ही महिमा है। कहने वाले सन्तों, महात्माओं ने तो बात को स्पष्टरूप में कह दिया। परन्तु एक ओर साधनहीन विद्वानों ने गूढ़ परिभाषाएँ गढ़-२ कर इसे कठिन बना दिया और दूसरी ओर पक्षपाती और हठ-धर्मी मनुष्यों ने न्याय के गले पर छुरी चलाकर, स्वयं तो उससे वंचित रहे ही तथा नाना प्रकार की अनसमझियाँ फैला कर, दूसरों को भी उससे लाभ नहीं उठाने दिया। यह सिलसिला अब तक बराबर चला आता है। केवल कोई बिरला अधिकारी ही इधर झुकता है। और लोग तो कोरे के कोरे ही रह जाते हैं। एक ओर तो रूखे तपस्वी, तपस्या की महिमा गाते हुए संसार के पदार्थों से विमुख होकर, अपने मन, बुद्धि और स्वभाव को रूखा बना लेते हैं, बुद्धि और विवेक से कोसों दूर चले जाते हैं। दूसरी ओर संसारी लोग हैं, जो सदा भोग-विलास में फँस कर सूक्ष्म इन्द्रियों के सुख और आनन्द को खो बैठते हैं। दोनों ही सच्चाई से बहुत दूर हैं। बिचली राह पर लोग क्यों नहीं चलते, जिसमें किसी भी प्रकार की खींचातानी नहीं है।

यह शिक्षा हमें मधु की मक्खी से लेनी चाहिए, जो खिले हुए फूल पर बैठकर रस तो ले लेती है, परन्तु पँखुड़ियों पर अपने पाँव का धब्बा या निशान नहीं छोड़तीं। गुरु की वाणी है :—

"साधू ऐसा चाहिए, जैसे सूप स्वभाव।
सार सार को गह रहै, थोथा देइ उड़ाय॥"

सूप या छाज की तरह केवल अनाज को तो फटक-छोड़ कर ले लो और भूसी को उड़ा दो। संसारी व्यवहार में भी ऐसा ही बर्तना चाहिए। यह असली सन्तमत है और यही मध्यमार्ग या बिचली राह है :—

अवगुण को तो न गहै, गुण ही को ले बीन।
घट-२ भटकै मधुप क्यों, परमातम ले चीह्न॥

मनुष्य को चाहिए कि वह दूसरों की बुराई को न देखते हुए, केवल उनके गुणों को चुनता रहे। भँवरे को देखो तो! वह सुगन्ध के घड़ों पर मंडराता हुआ, उसकी बास तो ले लेता है, परन्तु तलछहट को हाथ तक नहीं लगाता। आपको भी चाहिए कि आप भी उसी प्रकार घट-२ में जो परमतत्त्व व्यापक है. उसको परखो और पहिचानो।

हंसा पय को काढ़ ले, छीर नीर निरुआर।
ऐसे गहै जो सार को, सो जन उतरे पार॥

हंस का गुण है कि वह दूध और पानी को अलग करके केवल दूध को पी लेता है और पानी को छोड़ देता है। इसी प्रकार, जो लोग सार को ग्रहण कर लेते हैं, वह सहज से ही भवसागर से पार हो जाते हैं। परन्तु सत्संगियों की चाल क्या है? वे मक्खी की तरह दुर्गन्धि को प्रिय समझते हैं। अपने को धार्मिक कहने वाले लोग, धर्म के नाम पर नाना प्रकार की बुराइयाँ फैलाते हैं। वे अपने आपको भी हानि पहुँचाते हैं और दूसरों को भी। जिस पन्थ या धर्म में व्यर्थ

का खण्डन, मण्डन देखो, तो समझ लो कि उनमें विष्ठा की मक्खियों का गुण है। सन्तों का मार्ग (पन्थ) इससे कोसों दूर है। ऐसे संसारी लोगों के विषय में परमसन्त कबीर साहिब की वाणी है :—

कबीर कीट सुगन्धि तज, नर्क गहै दिन रात।
तैसेहि मनुष्य असार गह, गहै असारहि बात॥"

कीड़ा सुगन्ध को छोड़कर रात-दिन दुर्गन्ध पर मरता है। ऐसे ही असार का ग्रहण करने वाला मनुष्य व्यर्थ बातों में अपना अमूल्य समय नष्ट करता है।

आटा तज भूसी गहै, छलनी देख निहार।
कबीर सारहिं छाँड़ि कर, करै असार अहार॥

छन्नी (छलनी) क्या करती है? बारीक और अच्छा आटा तो छान कर नीचे गिरा देती है, केवल भूसी-२ ऊपर रख लेती है। ऐसे ही अविवेकी मनुष्य तत्त्व को छोड़कर केवल व्यर्थ बातों पर ही ध्यान देते हैं।

कोल्हू क्या करता है? रस को निथार कर तो नीचे बहा देता है और स्वयं गन्ने की सूखी छोई को रख लेता है। इसी प्रकार, ज्ञानहीन तथा अविवेकी पुरुषों की दृष्टि तत्त्व पर नहीं रहती, वे असार (तलछट) पर ही ध्यान देते हैं।

अब प्रश्न यह है कि सहज योग किया कैसे जाता है और इसे मध्यमार्ग का नाम क्यों दिया गया है? इसके उत्तर में संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि नदी के दोनों किनारों पर कूड़ा-करकट और कीचड़ रहता है। ठण्डा और सुथरा पानी तो केवल बीच में ही दिखलाई देता है। इस भवसागर के भी दो किनारे हैं एक लोक दूसरा परलोक। या आप यह कह सकते हैं कि एक ओर सदा शरीर को सुख देने का ध्यान और दूसरी ओर शरीर को कष्ट पहुँचाने का विचार।

ये दोनों ही व्यर्थ हैं। मध्यमार्ग अपनाने से न तो शरीर को बहुत कष्ट मिलेगा और न ही बहुत आराम या सुख। दोनों का सार तत्त्व आपके हाथ में रहेगा। इंगला, पिंगला को छोड़कर सुषुम्णा में चलना होगा। ये तीनों शब्द (इंगला, पिंगला तथा सुषुम्णा) विद्या के सम्बन्ध में बहुत ही प्रसिद्ध तथा प्रचलित हैं। इतना ही नहीं, बल्कि साधन करते समय इनसे काम भी लेना पड़ता है। जब तक सुरत (रूह) को मध्यमार्ग में ठहरा कर, चक्रों को बेधते हुए, आगे बढ़ने की इच्छा नहीं होती, तब तक आत्मिक उन्नति के दृश्य आँखों के सामने नहीं आते! प्रश्न के एक अंग का उत्तर तो यह हुआ। दूसरा अंग या प्रश्न यह है कि यह सहज योग कैसा है? इसका उत्तर यह है कि इसमें न तो किसी बात का बन्धन है, न परिश्रम और न ही व्यर्थ बातों का बतंगड़। न यहाँ तीर्थ की ज़रूरत है, न व्रत की। अपने घर में सुगमता के साथ बैठकर मालिक का नाम जपना पड़ता है। कर्मकाण्ड में तो बड़ी-२ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है—रोज़ा निमाज़ का बन्धन, पूजा पाठ, यम, नियम और तीर्थ व्रत के रगड़े-झगड़े, नियत समय का ध्यान रखना, सामग्री को एकत्रित करना इत्यादि-२। परन्तु सहज योग के साधन में ऐसी कठिनाई नहीं आती। नाम लेने में कौन-सा परिश्रम करना पड़ता है? क्या नाम का जाप भी दुःख का कारण होता है? नहीं! कभी नहीं!! इसे साधारण से साधारण मनुष्य भी कर सकता है। इस नाम में जिह्वा तक को भी हिलाना नहीं पड़ता। जो कुछ होता है, आप ही होता रहता है। केवल ध्यान देने की बात होती है। ध्यान देते ही साक्षात्कार होने लगता है, इसलिये ही इसका नाम सहज योग है। गुरु की वाणी है :—

सहजे ही धुन होत है, हरदम घट के माहिं।
सुरत-शब्द मेला भया, मुख की हाजत नाहिं॥

आपके अन्तर में आप ही आप धुनि हो रही है सुरत (रूह) को शब्द के साथ मिला दो, जिह्वा तक को हिलाने की आवश्यकता नहीं।

अन्तर का शब्द बहुत ही रसीला होता है। वह आप ही आप सुरत को अपनी ओर खींचे रखता है। इसलिये उसकी ओर ध्यान देने में कोई कष्ट भी नहीं होता। शब्द में बहुत बड़ी आकर्षण-शक्ति है। वीणा और सितार बजते ही मन अपने आप ही उसकी ओर खिंच जाता है। जब संसार के बाजों की यह दशा है, तो फिर अन्तर का शब्द कैसा बलवान् और आकर्षित करने वाला होगा। ज्यों ही चित्त लगा, एकाग्रता अपने आप ही आती जायेगी और एकाग्रता में सच्चा आनन्द प्राप्त होने लगेगा। यह तो मनुष्य के निज अनुभव की बात है। इस सहजयोग में बस इतना ही करना पड़ता है। इसीको ही सच्चे नाम का सच्चा सुमिरन कहा जाता है। कलियुग का धर्म भी इतना ही बताता है। सन्त तुलसी दास जी कहते हैं :—

"ध्यान प्रथम युग मख युग दूजे।
द्वापर परितोषित प्रभु पूजे॥
कलि केवल यक नाम अधारा।
वेद पुराण सन्तमत सारा॥

सतयुग में ध्यान, त्रेता में यज्ञ-हवन, द्वापर में मूर्ति-पूजा और कलियुग में केवल नाम का ही आधार है। यह वेद, पुराण और सन्तमत का सार है। यह नाम वास्तव में, वही है जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। असली नाम तो धुन (ध्वनि) है, जो हमारे अन्तर में गूँज रही है। हरएक के अन्दर गूँज रही है। भेद केवल इतना है कि औरों ने

परदा देकर इसका उपदेश केवल सच्चे अधिकारियों को दिया है और हम खुल्लमखुल्ला इसकी व्याख्या कर रहे हैं। इसीको नाम-योग भी कहते हैं और अनहद योग भी। अब यदि लोग नाम लेने या नाम-योग के साधन करने, इस धुनात्मक नाम को जपने से घबराते और कतराते हैं फिर हम क्या करें? और भी कोई क्या करे? सहज योग की विधि सहज और साधारण है। स्त्री, पुरुष, बच्चे, बड़े, बूढ़े सभी इस योग को कर सकते हैं।

इस अनहद शब्द के अभ्यास से क्या लाभ होता है? इसका उत्तर हम संसार के सभी सद्ग्रन्थों से दे सकते हैं। यहाँ हम आपको गुरुवाणी सुनाते हैं :—

1) गगन मंडल के बीच में, जहाँ सोहंगम डोर।
शब्द अनहद होत है, सुरत लगी तहाँ मोर॥

2) कबीर कमल प्रकाशिया, ऊगा तिर्मल सूर।
रैन अन्धेरी मिट गई, बाजे अनहद तूर॥

3) निर्झर झरै, अनहद बजै, तब उपजै ब्रह्म ज्ञान।
अवगति अन्तर प्रगटई, लगा प्रेम निज ध्यान॥

4) सुन्नमण्डल में घर किया, बाजे शब्द रसाल!
रोम रोम दीपक भया, प्रगटे दोन दयाल॥

5) कबीर! शब्द शरीर में, बिन गुन बाजे तांत।
बाहर भीतर रम रहा, ताते छूटे भ्रान्त॥

6) शब्द शब्द बहु अन्तरा, सार शब्द चित दे।
जा शब्दे साहिब मिले, सोई शब्द गह ले॥

7) शब्द शब्द सब कोई कहे, वह तो शब्द विदेह।
जिह्वा पर आवे नहीं, निरख परख कर लेह॥

8) शब्द बिना सुरत आँधरी, कहाँ-२ को जाय।
द्वा न पावे शब्द का, फिर-२ भटका खाय॥

9) कस्तूरी नाभी बसै, मृग ढूँढे वन माहिं।
ऐसे शब्द घट में बसै, दुनिया जाने नाहिं॥

इन दोहों से शब्द-अभ्यास से लाभ का पता चल जाता है। यही शब्द-योग ही आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने का मध्य-मार्ग है। जिनको अभ्यास करते-२ बहुत समय हो गया है और उन्हें कुछ लाभ नहीं पहुँचा, उनके विषय में समझ लो कि उन्होंने किसीसे पूरा भेद नहीं लिया और न ही सत्संग लिया। इससे अधिक क्या कहें समझ हो तो इस सहज योग से लाभ उठाओ और बिचली राह से चलते हुए इसी जन्म में ही अपना काम बना लो। आगे मालिक जाने क्या हो! अवसर से लाभ उठाना बुद्धिमानों का काम है।

गुरु-माहात्म्य

दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज

ईश्वर ने देखा कि मनुष्य में बड़ी ममता है और वह अहंकार का पुतला है, जिसके कारण वह संसार में प्रतिदिन उत्पात मचाता रहता है। सब सोचने के बाद समझ में आया कि मनुष्य मनमत है और इस मनमता ही के कारण वह चैन नहीं पाता। तब मनुष्य ने गुरुमत की प्रणाली निकाली। उससे बहुत मनुष्य सुधर गये। परन्तु कुछ ऐसे महान् ऋषि तक भी कभी-२ गुरुमत नहीं होते। नारद आदि जैसे ऋषि भक्त कहलाते हैं। ऐसे भक्त अपने तपोबल से ईश्वरधाम को चले जाते हैं और ईश्वर का दर्शन कर आते हैं।

नारद समय-२ पर विष्णु के पास चले जाते। उनका आदर-सत्कार किया जाता और उन्हें आसन पर बिठाया जाता। परन्तु उनके जाने के फ़ौरन बाद जिस स्थान पर वह बैठते उस जगह को गोबर से लीप दिया जाता। एक बार नारद ने यह देख लिया और ईश्वर से पूछा, "भगवन्! मेरे बैठने की जगह को लीपा क्यों जाता है? क्या मैं अपवित्र हूँ?"

ईश्वर बोला, "नारद! तुम ज्ञानी, ध्यानी, पण्डित सब कुछ हो, परन्तु अभी तक मनमत हो, गुरुमत के नहीं बने। तुम अपनी दिलकश बुद्धि के कारण महान् ज्ञानी हो,

तुम बड़े भक्त तथा तपस्वी भी हो इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं। पर गुरुमत न होने के कारण ही मैं तुम्हें पवित्र नहीं समझता, इसलिये तुम जहाँ बैठते हो वह जगह अपवित्र हो जाती है, इसीलिये उस जगह को लिपवा दिया जाता है।"

नारद बोला, "प्रभो ! यह सत्य है कि मैंने आज तक कोई गुरु धारण नहीं किया। मैं आपका भक्त तो हूँ। क्या आपकी भक्ति मुझे पवित्र नहीं बनाती ?"

ईश्वर ने उत्तर दिया, "प्यारे नारद ! तुम भक्ति किसकी करते हो ? मेरी या और किसीकी ? यदि मेरी भक्ति करते हो, तो समझ लो कि मैं सूक्ष्म तत्त्व हूँ और तुम स्थूल तत्त्वों से बने हो। स्थूल और सूक्ष्म में भेद रहता है। उनमें परस्पर प्रेमभाव हो ही नहीं सकता। भक्ति प्रेम का नाम है। मनुष्य-२ में प्रेम सम्भव है, परन्तु देवता और मनुष्य में प्रेम कैसा ! यह प्राकृतिक नियम है। इसलिये हे नारद ! जीव और ईश्वर का प्रेम कल्पित, झूठा और मिथ्या है। तुथ सोचो नारद ! जब तक स्त्री-पुरुष दोनों मनुष्य के रूप में हैं तब तक उनमें प्यार होता है। यदि इन दोनों में से एक मर जाय और भूत बनकर दूसरे को प्रकट हो, तो क्या वह उसे प्यार करेगा ?" नहीं, नहीं, वह तो डर के मारे भाग जायेगा।"

नारद की आँखें खुलीं, वह बोला, "तो फिर मनुष्य किसकी भक्ति करे ?"

ईश्वर बोला, "मनुष्य को गुरु की ही भक्ति करनी चाहिए।"

नारद ने पूछा, "क्या देवताओं, ईश्वर तथा ब्रह्म की भक्ति नहीं करनी चाहिए ?"

ईश्वर हँसा गुरु को ही सब कुछ समझो नारद ! कहा गया है :—

1) अखण्डमण्डला कारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥
2) गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः

नारद बोले, "प्रभो ! आप तो मुझे ज्ञान द्वारा ही प्राप्त हुए हो ।

ज्ञानदृष्टि सूक्ष्म है, इसलिये सूक्ष्म-२ का मेल नहीं हो सकता क्या ?"

ईश्वर ने कहा, "नारद ! जो तुम कह रहे हो वह मनमता है, उसमें अहंकार सम्मिलित है। यदि तुम मेरे सच्चे भक्त होते तो मुझमें तुम्हारी अगाध श्रद्धा होती। तुम मेरी बात को मानते और विवाद के झमेले में न पड़ते ।"

नारद बोला, "परन्तु भगवन् ! मैंने तो आपको ही गुरु मान रखा है ।"

ईश्वर मुस्करा कर बोला, "नारद ! मनुष्य का गुरु तो मनुष्य ही होता है। मैं मनुष्य का गुरु नहीं हो सकता। जो लोग पोथियाँ पढ़-२ कर मुझे गुरु धारण करने की कल्पना कर लेते हैं, वे भूल में पड़े हैं। मैं उन्हें यथार्थदृष्टि में प्राप्त नहीं होता। निगुरे को मेरी सभा में जगह नहीं मिलती। तुम मनमता के तपोबल से लाख मुझे प्राप्त समझो, परन्तु मेरे और तुम्हारे बीच में सदा भेदभाव रहेगा। जहाँ भेद है वहाँ भक्ति कैसी ! निगुरे का कोई सम्मान नहीं ।"

कबीरा निगुरा न मिले, पापी मिलें हज़ार ।
यक निगुरे की पोठ पर, लख पापी का भार ॥

नारद बोले, "भगवन् ! फिर मैं क्या करूँ ?"

ईश्वर ने कहा, "जाओ, मनुष्य गुरु ढूँढ़ो, मनमत को छोड़कर गुरुमत बन जाओ ।"

नारद—"मैं गुरु ढूँढूँ कैसे ?"

ईश्वर—प्रातःकाल गंगा के तट पर जाओ। जो पहिला पुरुष तुम्हें नज़र आये बस उसीको गुरु धारण कर लो।"

नारद जी दूसरे दिन प्रातःकाल ही गंगा-तट पर गये। पहिला व्यक्ति जो उन्हें दिखाई दिया वह था एक मछुआरा, जो कन्धे पर जाल रखे हुए जा रहा था। उसे देखते ही नारद जी के मन में घृणा उत्पन्न हुई। सोचा यह अनपढ़ गँवार मछुआरा उन जैसे ज्ञानी का गुरु कैसे हो सकता है ? उल्टे पाँव चल खड़े हुए।

पीछे से कान में भनक पड़ी, "यह नारद कैसा मूर्ख है, कैसा अज्ञानी है जिसे ईश्वर के वचन पर भी विश्वास नहीं। गुरु धारण करने आया था परन्तु निकला वही मनमत।"

नारद वापिस लौटे और माझी के चरणों पर गिर कर बोले, "आप कौन हैं ?" माझी बोला "मैं आपके प्रश्न का उत्तर देने के लिए इस समय तैयार नहीं हूँ।"

नारद ने कहा, "मुझे अपना दास बनाइये।"

उसी समय माझी ने नारद को दीक्षा दी और बोला, नारद ! अब तूने गुरु धारण कर लिया है। तू गुरुमत हो गया है। अब मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दूंगा।

नारद बोला, "इस गुरुमता से लाभ क्या है ?"

माझी ने कहा, "मनमता और अहंकार को तोड़ना।"

नारद बोला, "क्या एक ज्ञानी का गुरु कोई ऐसा भी हो सकता है जो शास्त्र न जानता हो ?"

माझी हँस कर बोला "तू शास्त्र की दृष्टि से गुरु धारण करने आया है या गुरु की दृष्टि से ? जो गुरु को किसी और दृष्टि से धारण करता है वह गुरु-भक्त कभी नहीं हो सकता।"

नारद उस माझी के चरणों पर गिर पड़े। माफी मांगी। माझी हँस कर बोला, "बैठ जा और अन्तर में ध्यान कर।"

जब नारद ने आँख बन्द कीं, अन्तर के पट खुल गये। प्रकाश और ज्योति का चमत्कार देखा। ज्योतिस्वरूप गुरु का दर्शन मिला, आन्तरिक शब्द की गुंजार को सुना।

माझी ने कहा, "नारद ! अब तेरे निगुरे होने का पाप जाता रहा। तू मुझे अनपढ़ गँवार समझता था, मैं तो परम-तत्त्व तथा सत्पुरुष हूँ। मेरी ही भक्ति सच्ची भक्ति है। आज से तेरा सम्मान होगा, तेरी आरती उतारी जायेगी, क्योंकि तू गुरुमत हो गया है।"

नारद ने आँख खोली, माझी खड़ा हुआ था, वह माझी के चरणों में गिर कर बोला।

बन्दौं गुरु पद कंज, कृपासिन्धु नररूप हरि।
महा मोह तम पुँज जासु बचन रविकर निकर॥

यह उपदेश देकर माझी चला गया और नारद गुरु के गुण का गान करते हुए चल पड़े।

शब्द

(1) गुरु की महिमा कौन गाये---उसका गाना है कठिन।
पहुँचने वाले हैं कहाँ तुझ तक, वानी और वचन॥

(2) बुद्धि निर्णय कर नहीं सकती, न चित चिन्तन के योग।
सोचने और समझने की शक्ति, पाता है न मन॥

(3) ज्ञानी अपनी युक्ति भूले, ध्यानी भूले ध्यान।
योगी थक कर हार बैठे, कर चुके जब सब जतन॥

(4) तू नहीं काशी न ही मथुरा, द्वारिका में तू कहाँ।
ढूंढने बनखण्डी और तपस्वी, चले हैं सूने वन॥

(5) मेरे हृदय में बना रहता है, हर समय तू ही तू।
राधास्वामी भेद बतलाया, लगी तुझसे लगन॥

गुरु के चरण हैं प्रकाश

परमसन्त परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज

मेरा वांका रंगीला मनुआ, गुरु भक्ति रस में पागा।
पहिले बोलत बचन कठोरा, द्वेष ईर्ष्या लागा॥
अब तो बोले मधुरी बानी, हंस बना है कागा।
वैर भाव की दुर्मति नासी, चित उपजा अनुरागा॥
ममता मोह मान मद छलबल, काम क्रोध सब त्यागा।
गुरु के चरण झुकावत माथा, भरम भाव भय भागा॥
जनम जनम का सोया मनुआ, राधास्वामी दया से जागा॥

राधास्वामी!

प्रायः लोगों ने गुरुमत से यह समझ रखा है कि गुरु को फूल चढ़ाओ, धूप दो, अच्छे-२ कपड़े पहनाओ। उसकी आरतियाँ उतारो, उसकी सेवा करो, बस मुक्ति मिल जायेगी। मैं अपने आप से प्रश्न करता हूँ क्या गुरु की आरतियाँ उतारने से, उसे अच्छे-२ कपड़े पहनाने से, तुमको वह वस्तु मिल गई, जिसकी तुम्हें तलाश थी? अब पहिली बात तो यह है कि मैं कौन-सी वस्तु की तलाश करता था। जब व्यक्ति के मन में चंचलता आ जाती है, वासना आ जाती है और भ्रम आ जाता है, तो उसके कारण उसे शान्ति नहीं मिलती। हालाँकि सबसे अधिक मनुष्य शान्ति चाहता है, परन्तु वास्तव में उसे पता नहीं कि वह क्या चाहता है। देखो! अब यह पुरुषोतम दास और मामचन्द बीमार हैं। यह घबराते हैं। क्यों? क्योंकि

इनके शरीर के पुर्ज़े काम नहीं करते। उनमें हलचल है। मेरे साथ भी ऐसा हो जाया करता है। मेरे साथ क्या, सब के साथ ऐसा होता रहता है। यह तो हाल है शरीर का और ऐसा ही हाल है मन का। इसके लिए है गुरु-भक्ति। गुरु-भक्ति से क्या मिलता है ?

मेरा बांका रंगीला मनुआ, गुरु भक्ति रस में पागा।
पहिले बोलत बचन कठोरा, द्वेष ईर्ष्या लागा।
अब तो बोले मधुरी बानी, हंस बना है कागा॥

साधारणतया यदि किसीको कड़वी बात कह दो तो उसको फ़ौरन क्रोध आ जाता है और वह भी कड़वी बात कह देता है। एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से ईर्ष्या हो जाती है कि उस व्यक्ति के पास धन है और उसके पास क्यों नहीं। ऐसे सामान्य व्यक्ति तथा एक गुरु-भक्त में क्या अन्तर है ? गुरु-भक्त के अन्दर गुरु की कृपा के कारण घृणा, द्वेष के भाव समाप्त हो जाते हैं उसका क्रोध चला जाता है, ईर्ष्या समाप्त हो जाती है। यदि आप देखना चाहो कि अमुक व्यक्ति भक्त है या नहीं, तो आप उसके जीवन की पड़ताल करो। यदि उसमें ईर्ष्या या द्वेष है या क्रोध है या लोभ तथा अहंकार है, तो वह हरगिज़ गुरु-भक्त नहीं है। चाहे वह बड़े से बड़े गुरु का चेला बने, मन्दिर बनवाये, गुरुद्वारा बनवाये, या किसीके डेरे में हज़ारों रुपये का दान दे दे, वह गुरु-भक्त नहीं हो सकता। कौवे की बोली तेज़ और कड़वी होती है और वह गन्दगी खाता है। जिस व्यक्ति की बुरी आदतें होती हैं, वह कौवा है। गुरु-भक्त के लक्षण क्या हैं ?

बैर भाव की दुर्मति नासी, चित उपजा अनुरागा।
ममता मोह मान मद छलबल, काम क्रोध सब त्यागा॥

गुरु-भक्त का कोई शत्रु नहीं होता और न ही वह किसीको अपना शत्रु समझता है। वह किसीका अपमान नहीं करता। सबसे प्रेम करता है। ममता क्या है? मेरा-तेरापना। लड़के को कष्ट होने से लड़की को कष्ट होने से या व्यापार में घाटा हो जाने से, जो आदमी रोता है, वह ममता है। मोह तो तुम लोग जानते ही हो। यह सब गुरु-भक्त के लक्षण नहीं हैं। गुरु-भक्त में यह लक्षण होने चाहिएँ।

गुरु चरण झुकावत माथा, भरम भाव भय भागा।

जो व्यक्ति गुरु के चरण में मत्था टेकता है, मैं पूछता हूँ क्या उस मत्थे टेकने से उसके भ्रम समाप्त हो जाते हैं? नहीं इसका जवाब है नहीं। संसार के लोग अज्ञानी हैं।

गुरु के चरण हैं प्रकाश। परन्तु अज्ञानी लोगों को इसका पता नहीं। उनका भी इसमें क्या दोष है? उनको किसीने सच्ची बात बताई ही नहीं।

जनम जनम का सोया मनुआ, राधास्वामी दया से जागा।

जनम कहते हैं हालत को। एक जनम या हालत है उत्पन्न होना। पूर्व-जन्मों का या होने वाले अगले जन्मों का तो मेरे पास कोई सबूत नहीं है लेकिन बुद्धि से हम जानते हैं कि जन्म है। मन रोज़ नई-२ हालतों से गुज़रता रहता है, वही हालतें ही जन्म हैं। मैं अपने आप से पूछता हूँ "फकीर! तुम अपने आपको सन्त सद्गुरु वक्त कहते हो, तुम किसी पर क्या दया कर सकते हो, जिससे कि जीव की वह अवस्था आ जाये, जो इस शब्द में लिखी हुई है? मैं तो दया करता हूँ, मगर मेरी दया को कोई लेता ही नहीं। गुरु क्या दया कर सकता है? गुरु की दया यह है कि गुरु समझ, विवेक और ज्ञान देता है। गुरु जो वचन कहता है, उसमें समझ, विवेक, और ज्ञान होता है। हज़ूर दाता दयाल

जी महाराज ने मुझे गुरु-पदवी देकर, मेरी आँख खोल दी। जब आप लोगों से यह पता चला कि मैं आपके अन्तर में प्रकट होकर आपके काम कर देता हूँ, लेकिन मैं दावे से कहता हूँ कि मैं नहीं होता, तो मुझे पक्का विश्वास हो गया कि यह आपका अपना ही विश्वास या ख्याल होता है, जो मेरा रूप प्रकट कर लेता है। मुझे यह भी विश्वास हो गया कि मेरे स्वयं के अन्दर भी जो ख्यालात, भाव या विचार पैदा होते हैं, उनकी असलियत भी कुछ नहीं। यह महज़ संस्कार हैं,माया है। अब मेरे दिल में जब कोई इच्छा या बुरा विचार पैदा होता है,तो मैं इस ज्ञान से अपने दिमाग़ पर उसका प्रभाव नहीं पड़ने देता। मन का मारा हुआ कोई भी व्यक्ति अगर मुझे कोई बुरी बात कह भी देता है, तो मुझे उस पर क्रोध नहीं आता। अब मैं यह जानता हूँ कि श्री पुरुषोतम दास और मामचन्द बीमार हैं, परन्तु मुझे उनकी बीमारी से कोई डर नहीं लगता, क्योंकि मैं यह जानता हूँ, मुझे इस बात का ज्ञान है कि जो भी यहाँ आया है, उसे एक दिन जाना ही है। अपना-२ कर्म सभी ही को तो भोगना पड़ता है। हाँ मुझे उनके साथ सहानुभूति है, इनके इलाज के बारे में भी सोचता रहता हूँ। गुरु की दया यह है कि गुरु के सत्संग में जा कर, उसके वचनों को प्रेम और श्रद्धा से सुनो, उन पर विचार करो तथा उन पर अमल करो। जिसके मन में गुरु से प्रेम और श्रद्धा नहीं, उस पर गुरु की दया नहीं होती किस गुरु की दया? जो गुरु पूर्ण है, क़ामिल है और बन्धनों से आज़ाद है, बेगरज़ है। गुरु नाम है ज्ञान, समझ तथा विवेक का। मगर साधारण लोग इस ऊँची बात को समझते नहीं, इसलिये ही शुरू-२ में उनके लिए गुरु की सेवा करना, पैसा देना, फूल चढ़ाना, राधास्वामी नाम का सुमिरन करना, गुरु के रूप का ध्यान करना ज़रूरी है।

जब असलियत समझ में आ जाती है, तब पता चलता है कि गुरु के चरण तो प्रकाश हैं। पहिले अपने आपको प्रकाश में ठहराओ। तुम्हारे अन्तर में जो प्रकाश है, वही सच्चे सद्गुरु के चरण हैं।

सिमरौं नित गुरु का नाम, क्षण प्रतिक्षण आठों याम।

जब गुरु-भक्ति से असलियत समझ में आ जाती है, तब आदमी अपने नुक्स दूर कर सकता है। मगर अगर सुरत को कहीं ठहरने का मौका या ठिकाना ही नहीं है, तो मन छलांगें लगाता रहेगा। उस समय यदि आप अनुचित विचारों को रोकने की कोशिश भी करोगे तो वह रुकेंगे नहीं। इसलिये यह ज़रूरी है कि मनुष्य हर समय कर्म में ही लगा रहे, जिससे कि उसके मन को ठहरने का साधन मिले। यही कारण है कि कहा जाता है "Work is Worship" काम पूजा है। मन से परे जा कर जिस स्थान पर तुम्हारी सुरत ठहरती है उसका नाम है "नाम" अगर तुम उस मुकाम पर बैठे हुए हो, तो मन तुमको खींच नहीं सकता। अब आप ही बताओ क्या कोई आदमी रोज़ाना चौबीस घण्टे राधा-स्वामी नाम या पंच नाम या राम नाम का सुमिरन कर सकता है? नहीं, नहीं कर सकता न? कोई भी व्यक्ति चौबीस घण्टे नाम नहीं जप सकता। यह असम्भव है। मैंने जो चौबीस घण्टे नाम का सुमिरन का अर्थ समझा है, वह यह है।

त्यागूँ मद, मोह काम, दारा सुत धन धाम।
लोक लाज साज काज, राज काज से न काम॥

तुम्हारा अपना रूप न शरीर है, न मन है, न प्रकाश है और न शब्द है। तुम्हारी हस्ती तो इन सबसे न्यारी है। ज़रा सोचो तो! जिस चीज़ का तुम अन्तर में ध्यान करते हो, वह और है और तुम और हो। शब्द और है तुम और हो। जब व्यक्ति को इस बात का ज्ञान हो जाता है तो वह

समझ जाता है कि यह शरीर तो केवल चन्द रोज़ ही मेरे रहने के लिए यहाँ आया है। ऐसा समझ कर वह मन के फँसाव में नहीं आता। वह अपने आपको इन सबसे अलहदा समझता है।

मैं जब शुरू-२ में राधास्वामी की पुस्तकों में पढ़ता था कि दयाल पद और है तथा काल पद और है, मुझे पता नहीं लगता था। अब बात समझ में आ गई कि दुनिया और चीज़ है तथा प्रकाश और शब्द और चीज़ है तथा इन सब की साक्षी कोई और ही चीज़ है। जहाँ-२ सृष्टि की रचना है, वहाँ-२ प्रकाश भी है और शब्द भी है। परन्तु वह मालिके कुल तो इन सबसे न्यारा ही है और उसका अंश इन सबकी साक्षी है। जब वह साक्षी इस ओर ध्यान देती है, तब उसको दुनिया भासती है। परन्तु जब वह इस तरफ से अपना ध्यान हटा लेती है, तो वह दुनिया में फँसती नहीं, हालाँकि काल का चक्र बराबर चलता रहता है। जिसको यह विश्वास हो गया कि उसकी सुरत, प्रकाश और शब्द से भी अलग है, उस पर काल के चक्र का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। इस ज्ञान के दृढ़ होने का नाम ही "नाम-प्राप्ति" है। चाहे कोई व्यक्ति रारंग, सारंग भले ही सुनता हो, चाहे वह सोहंग सुनता हो, उसे भले ही आनन्द की प्राप्ति होगी परन्तु यह स्थायी प्राप्ति नहीं होगी। एक समय ऐसा आयेगा कि वह गिर जायेगा। मैंने अपनी ज़िन्दगी की भी छान-बीन की है और दूसरों की ज़िन्दगियाँ भी देखी हैं।

जो गुरु गद्दी पर बैठने के बाद उस गद्दी को अपनी व्यक्तिगत गद्दी समझता है, वह गुरु नहीं है, उसको तो गुरु-मत का ज्ञान ही नहीं। वह यह जानता ही नहीं कि गुरु शब्द है और सुरत शिष्य है।

गुरु चेला व्यवहार जगत् में झूठा बरत रहा।
का से कहूँ खोज नहीं काहूँ धोखे धार लिया॥

गुरु तो लाभ प्रतिष्ठा चाहत, शिष्य स्वारथ संग भान बंधा।
सच्चा मार्ग सुरत-शब्द का सो तो गुप्त भया ॥

जो गुरु गद्दी का मालिक होकर उसमें फँस जाता है वह काल-चक्र से कभी नहीं निकल सकता। गद्दी काल का जाल है, इसलिये मैंने गद्दी नहीं बनाई। लोग पूछते हैं कि मेरे बाद कौन आयेगा ? मैं कहता हूँ कि प्रकृति को जिससे भी काम लेना है, वह अपने आप ही आकर काम करेगा। हम तो केवल सेवक ही हैं, जो सेवा करते हैं।

एक बार कबीर साहिब कहीं जा रहे थे, साथ में एक चेला भी था। रात को वह किसी धर्मशाला में ठहरे। धर्मशाला के मालिक ने कबीर से पूछा, "तुम कौन हो ?" वह चुप रहे, कोई उत्तर नहीं दिया और बाहर आ गये। फिर धर्मशाला वाले ने चेले से पूछा। चेले ने उत्तर दिया कि वह एक साधु था। इस पर चेले की खूब पिटाई की गई। वह बाहर आकर कबीर साहिब से कहने लगा, "महाराज मेरी तो खूब पिटाई हुई" कबीर साहिब बोले, "तुम कुछ बने होगे ?" चेले ने उत्तर दिया, "हाँ महाराज ! मैंने उन्हें कहा कि मैं एक साधु हूँ।" तब कबीर बोले, "तुम कुछ बने, तभी तो तुम्हारी पिटाई हुई, यदि कुछ भी न बनते तो पिटाई नहीं होती।"

सुमिरो नित गुरु का नाम

राम-राम, राधास्वामी-राधास्वामी, सतनाम-सतनाम या किसी और नाम का जपना सुमिरन की स्थूल अवस्था है। मैं यदि किसीको बुलाना चाहता हूँ तो उसको आवाज़ दूंगा। परन्तु जिस व्यक्ति को यह विश्वास हो जाता है कि मालिक उससे दूर नहीं है, वह तो मेरे पास है, तो वह व्यक्ति उसको बुलायेगा क्यों ? आवाज़ दे कर तो उसे

बुलाया जाता है जो दूर खड़ा है। इसलिये जो व्यक्ति ज़ोर-ज़ोर से सुमिरन करते हैं, भजन-कीर्तन करते हैं, वह सुमिरन की शुरू-२ की हालत है, सुमिरन का असली भाव नहीं। कबीर साहिब कहते हैं :—

मसजिद भीतर मुल्ला पुकारे, क्या साहेब तेरा बहरा है?
चींटी के पग नूपुर बाजे, सो भी साहेब सुनता है॥
पण्डित होय के आसन मारे, लम्बी माला जपता है।
अन्तर तेरे कपट कतरनी, सो भी साहेब लखता है॥

तुम्हारे अन्दर जो भी छल-कपट है, मालिक सब जानता है। हम दूसरों को तो धोखा दे सकते हैं, मगर अपनी अन्तरात्मा को धोखा नहीं दे सकते। इसलिये ही तो मैं कहा करता हूँ कि अपने आपको सच्चा रखो।

ऊँचा नीचा महल बनाया, गहरी नींव जमाता है।
चलने का मनसूबा नाहिं, रहने को दिल करता है॥
कौड़ी-२ माया जोड़ी, गाढ़ ज़मीन में धरता है।
जिसने लेना हो सो ले जेईहै, पापी बह-२ मरता है॥

प्रारब्ध कर्म के मुताबिक यह सब लेने-देने का ही खेल है। जिसे लेना है वह ले जाता है, जिसे देना है वह दे जाता है :—

सतवंती को गजी मिले नहीं, वेश्या पहने खासा है।
यह घर साधु भीख न पावे, भड़ुआ खात पतासा है॥
हीरा पाया परख नहीं जाने, कौड़ी परख न करता है।
कहत कबीर सुनो भई साधो, हरि जैसे को तैसा है॥

जैसा जिसका ख्याल है, जैसी जिसकी नीयत है, वैसा ही उसको फल मिलता है। नाम का सुमिरन क्या है? हर समय यह ख्याल रखना कि यह चार दिन की हमें जो ज़िन्दगी मिली है, वह नाशवान है। हम यहाँ तो मुसाफ़िर ही हैं, हमारा घर तो परमधाम है। हम यहाँ तो परमतत्त्व

के अंश के रूप में लीला करने ही आये हैं। खेलो, संसार के सुख भी भोगो, परन्तु उनमें फँसो नहीं, अपनी आदि अवस्था को भूलो नहीं। इस अवस्था में चौबीस घण्टे रहने को ही "नाम" कहते हैं। किसीका शब्द सुनना, बीन सुनना या प्रकाश को देखना, उसकी प्रकृति के अनुसार होता है। कई बार तीस-२ पैन्तीस-२ साल के अभ्यास के बाद भी जीवों का शब्द नहीं खुलता। मैं कहता हुँ अगर शब्द नहीं भी खुलता, प्रकास भी दिखाई नहीं देता और दर्जे भी नहीं खुलते, तो न सही, हमें तो नाम का सुमिरन करते ही जाना चाहिए, क्योंकि हमारा अन्तिम लक्ष्य तो है निजरूप को पहिचानना। सत्संग में बैठकर गुरु की बात को सुनो तथा उसे समझो, तुम्हें बेफ़िक्री बेग़मी और शान्ति मिलेगी यही ही तो मंज़िले मकसूद है। अभ्यास का मतलब ही शान्ति है।

हजूर बाबा सावन सिंह जी महाराज कई शिष्यों को कह देते थे कि वे अभ्यास न करें, क्योंकि वे शिष्य ऐसे थे जिनका शब्द और प्रकाश खुलता ही नहीं था।

चिन्ता को छोड़ दो। उस मालिक को मन में बसाओ, जिससे तुम आये हो। निचले दर्जों के खुलने से आनन्द तो मिलेगा, सिद्धिशक्ति भी मिलेगी, परन्तु असली चीज़ तो है उस मालिक या आधार का सहारा पकड़ना राधास्वामी मत वालों ने उस आधार को, उस मालिक को राधास्वामी कह दिया, किसीने कुछ कह दिया, किसी ने कुछ। यह एक शब्द-जाल है, बात तो एक ही है। जो व्यक्ति सुरत को शब्द से मिला देता है, लेकिन राधास्वामी नाम नहीं लेता, वह भी राधास्वामी मत को मानने वाला है।

एक शिष्य जब गुरु से नाम ले लेता है, तो उसका गुरु से सम्पर्क रखना बहुत ही ज़रूरी है। जो गुरु चेले से सम्पर्क नहीं रखता, उसकी बात नहीं सुनता, वह गुरु ही नहीं।

लेकिन संसार वाले तो बस अज्ञानी ही हैं। जहाँ अधिक भीड़ देखी वहाँ चल दिये। वह डेरों तथा आश्रमों की बाहरी सज-धज से ही प्रभावित होते हैं। आजकल गुरुमत का मज़ाक भी उड़ाया जाता है और गुरुआई को गुरुओं की उदरपूर्ति का साधन माना जा रहा है। मैं लोगों को दोष नहीं देता। वह कुछ हद तक ठीक भी हैं। गुरु लोग भोले-भाले शिष्यों को असलियत तो बताते नहीं। परन्तु मैं उन लोगों को जो यह समझते हैं कि गुरुमत एक पाखण्ड है, बता देना चाहता हूँ कि गुरुओं में पाखण्ड भले ही आ गया हो, परन्तु गुरुमत में पाखण्ड नहीं है। गुरुमत की गहराई में जाओ, असलियत समझ में आ जायेगी। यत्न करते चले जाओ। यदि गिर भी जाते हो, तो उठो और सम्भलने का यत्न करो। ग़लतियाँ तो सबसे होती हैं फिर ग़लती करना कोई पाप भी नहीं। ग़लतियों को सुधारा जा सकता है। रात को सोते समय विचार करो कि आज पूरे दिन में तुमने कौन-२ सी ग़लतियाँ की हैं। उन पर विचार करके उन्हें फिर न करने का प्रण करो यह है उपाय मन को वश में रखने का। लोग जो तुम्हारे साथ बुराई करते हैं, तुम्हारी निन्दा करते हैं, उन पर क्रोध मत करो, उनकी बातों का बुरा मत मानो, उनको दोष मत दो, किसीसे शिकायत भी मत करो। ये सब व्यक्ति अपनी-२ प्रकृति के अनुसार काम कर रहे हैं और सब खेल प्रारब्धकर्मों के ही अनुसार हो रहे हैं। बस इस बात में विश्वास रखकर गुरु ही के चरणों में प्रकाश है और गुरु के सहारे से, गुरु की दया से तुम्हारे सब काम बन जायेंगे, कर्म करते चले जाओ। सबको राधास्वामी!

———

सत्संग परमसन्त
हजूर मानव दयाल जी महाराज

यमुना नगर 29-5-90

ज्ञान दीजे ज्ञान दाता, ज्ञान के भण्डार से ।
सहज छुटकारा मिले, सबको कठिन संसार से ॥
कहने को तो बन्ध मुक्ति, कल्पना मन की सही ।
बिन दया सतगुरु के वह, मिटते नहीं हैं जीते जी ॥
नाम का दे आसरा, चरणों में अपने लीजिये ।
शब्द की महिमा बताकर, अपना सेवक कीजिये ॥
सच्चिदानन्दम् अखंडम् केवलम् निजरूप हो ।
निज दया से जाये, दुखदाई महाभव कूप खो ॥
आपका है आसरा और आपका विश्वास है ।
राधास्वामी तारिये, यह भी तुम्हारा दास है ॥

अखंडमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

राधास्वामी !

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप सद्गुरुरूप, उपस्थित सत्संगी भाइयो और बहनो ! आज यमुना नगर में रमेश जी के यहाँ सत्संग के लिए एकत्रित हुए हैं जबकि यह सत्संग आयोजित नहीं था। वैसे सत्संग कभी आयोजित नहीं होता। यह तो पहिले से निश्चित होता है, सत्संग देने वाले के लिए और सत्संग सुनने वाले के लिए।

बिनु सत्संग विवेक न होई ।
हरि कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥

सत्संग सुलभ और आसान है, इसलिये हरएक व्यक्ति को आसानी से मिल जाता है ।

सब ही सुलभ सब दिन सब देसा ।
सेवत सादर शमन कलेशा ॥

कलियुग के अन्दर सत्संग की महिमा इसलिये अधिक है, क्योंकि दुःखी जीवों की संख्या अधिक है । दुनियावी के झंझट इतने बढ़ गये हैं कि अपने इष्ट को, अपने मालिक को मिलने का समय नहीं मिलता । इसलिये प्राचीन काल के योग-साधन के जो तरीके थे, उन पर चलना कठिन हो गया है । सतयुग में ध्यान की, योग की विधि थी । हज़ारों वर्षों तक मनु और शतरूपा ने ध्यान लगाया । जब मनुष्य के रूप में नारायण प्रकट हुए, तो उन्होंने वर माँगने के लिए कहा । मनु और शतरूपा ने कहा, "प्रभो हमें आप जैसा पुत्र चाहिए ।" भगवान् ने कहा, "एक युग की प्रतीक्षा करो । त्रेतायुग में स्वयं मैं ही तुम्हारे यहाँ जन्म लूंगा क्योंकि मेरे जैसा पुत्र तो स्वयं मैं ही हो सकता हूँ ।" हज़ारों वर्षों तक का ध्यान उस समय के लिए था । आज इतना समय किसीके पास भी नहीं है । सतयुग के बाद त्रेतायुग में मालिक से मिलने का एक नया रास्ता निकाला गया और वह यह था कि गृहस्थ में रहते हुए, अपने कर्त्तव्यों को निभाते हुए, वेदों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करते हुए, मालिक का साक्षात्कार करना । त्रेतायुग में मनुष्य यज्ञ और मन्त्र की रीति से अपने चरम लक्ष्य को पा सकता था । आज के शब्द में ज्ञान की चर्चा है । वैदिक ज्ञान हमारे लोक और परलोक दोनों के लिए है । वेदों के बारे में बहुत सी भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं । यह भ्रान्तियाँ उन लोगों के कारण पैदा हुईं,

जो हम पर राज्य करते रहे। विदेशियों ने हमारे वेदों की ग़लत व्याख्या की। उन्होंने बताया कि वेदों के अन्दर देवी-देवताओं की, पेड़-पौधों की पूजा है। वैदिक धर्म एक प्राकृतिक धर्म ही है। लेकिन यह व्याख्या ग़लत है। वेद नाम है ज्ञान का और पूर्ण ज्ञान का। वेदों के अन्दर दो धाराएँ हैं, दो विद्याएँ हैं – धाराएँ हैं 1) ज्ञान 2) विज्ञान। विद्याएँ है मन्त्र विद्या तथा यज्ञ विद्या। एक है ब्रह्म विद्या, दूसरी है ब्राह्मण विद्या। ज्ञान शब्द का पूर्ण अनुवाद अंग्रेज़ी में नहीं हो सकता।

मन्त्र विद्या—

मन्त्र, शब्द की वह जड़ है, जिससे त्राण होता है, कल्याण होता है। मन्त्र विद्या का सम्बन्ध एकत्व से है। जगत् के एकत्व के पीछे जो परमतत्त्व है, जिसको ढूँढते-२ सभी धर्मों ने,सभी वेदान्तियों ने,(वेदान्तियों से मेरा मतलब शंकराचार्य से नहीं है) नेति-२ कहा है। मैंने आपको बताया कि वेद नाम है ज्ञान का और वेदान्त नाम है आख़िरी ज्ञान का। जिस ज्ञान को पाने के बाद में, किसी और चीज़ को पाने की आवश्यकता नहीं रहती है। वेदान्त उस तत्त्व का ज्ञान है,जिससे यह सारा जगत् निकला है, जिस पर सारा जगत् आधारित है, और अन्त में उसी में विलीन हो जाता है। हमारे अन्तर में आत्मा का ज्ञान मौजूद है। यह ज्ञान विज्ञान से अलग है। यह उस एकत्व का ज्ञान है, जहाँ से सब कुछ निकला। मन्त्र एक ऐसा शब्द है, जिसके अनुभव से सारे जगत् का ज्ञान, मालिक का ज्ञान व अनुभव हो जाता है।

यज्ञ विद्या—

यज्ञ विद्या क्या है ? यज्ञ है उस मालिक का फैलाव। उस एक से अनेक बने। मन्त्र विद्या एकत्व की विद्या है,

उस परमतत्त्व की विद्या है, जो अपने आप में पूर्ण है और उसीका पूर्ण रूप मनुष्य है।

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवा वविष्यते ॥

हमारे ऋषियों ने हज़ारों वर्षों तक आत्मिक तत्त्व पर प्रयोग किये, जिससे यह भौतिक जगत् निकला। हम क्या हैं? हमारा स्वरूप क्या है? उस मालिक का स्वरूप क्या है? ऋषियों ने अपने अनुभव के बाद देखा कि जहाँ से यह सारा जगत् निकला है, वह अपने आप में पूर्ण है, उसमें कोई कमी नहीं है। इसलिये हम उसको कोई नाम नहीं दे सकते। क्योंकि नाम तो सीमित होगा। लोगों में यह भ्रान्ति फैली हुई है कि जिसको हम ढूँढ़ने जा रहे हैं, उसका स्वरूप ही नहीं है। कोई उसे खुदा कहता है,कोई उसे अल्लाह कहता है, कोई उसे God कहता है। इसी भ्रान्ति के कारण लोग आपस में झगड़ते रहते हैं। लेकिन ऋषियों ने उस परमतत्त्व का अनुभव किया, जिससे यह सारा जगत् निकला है।

पश्चिम में भौतिक पदार्थ पर अनुभव किये गये हैं। यज्ञ पर भी अनुभव किये और उसकी शक्ति का उपयोग मनुष्य के कल्याण के लिए किया। लेकिन विज्ञान को बनाने वाला मनुष्य, स्वयं अपने आप में क्या है इस ओर ध्यान नहीं दिया गया। कहते हैं कि हमने बहुत भौतिक उन्नति की। छोटी कक्षाओं में बच्चों को पढ़ाया जाता है कि प्रारम्भ में मनुष्य सभ्य नहीं था। उसके पास हथियार नहीं थे। वह पत्थरों से काम लेता था। यदि एक व्यक्ति को मारना होता था, तो सौ आदमी पत्थर मारते थे, और वह व्यक्ति मर जाता था। फिर तलवार बनी, तीरकमान बने, बन्दूकें, तोप, बम, एटम बम आदि बने। इससे हज़ारों लोगों को

एक साथ मारा जा सकता है। अब आप ही सोचो कि यह मानवता की तरक्की है या दानवता की। यह कसूर विज्ञान का नहीं है, बल्कि उन लोगों का है, जो विज्ञान को अपने स्वार्थ के लिए, हिंसा के लिए प्रयोग करते हैं। लेकिन आज मानव विश्व के अन्दर यह महसूस कर रहा है कि असलियत में यह तरक्की नहीं है। यज्ञ विद्या सारे जगत् का विज्ञान है और मन्त्र विद्या है ज्ञान। ज्ञान उस चीज़ का जो मेरे अन्दर, आपके अन्दर, सबके अन्दर मौजूद है। जब उसका अनुभव हो जायेगा, तब आपको किसीसे नफ़रत नहीं रहेगी। इसको कहते हैं—वेदान्त अर्थात् वेदों का अन्त। एक ब्राह्मण विद्या होती है। ब्राह्मण विद्या का अर्थ है, सारे जगत् में फैले हुए ब्रह्म की विद्या। इसीको विज्ञान कहते हैं। विज्ञान है बाहरी जगत् का ज्ञान और ज्ञान है अन्तर का ज्ञान। विज्ञान है एटम का ज्ञान और ज्ञान है आत्मा का ज्ञान। एटम बाहर का ज्ञान है विज्ञान विविधता को दर्शाता है। 'विविधज्ञानं विज्ञानम्'। विज्ञान अलग-२ वस्तुओं का अलग-२ ज्ञान देता है। परन्तु ज्ञान एकत्व का ज्ञान है वह हमें इस भौतिक और आत्मिक जगत् को समन्वित करके,उस अवस्था पर पहुँचाता है, जिससे हम यह देखते हैं कि कण-२ के अन्दर वही तत्त्व विराजमान है। मैंने आपके सामने मंगलाचरण रखा :—

अखण्डमंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

गुरु का मतलब क्या है? गुरु दो शब्दों का मिलान है। 'गु' का अर्थ है अँधेरा अर्थात् अज्ञान का अँधेरा और 'रु' का अर्थ है, दूर करने वाला, अर्थात् अज्ञान के अँधेरे को दूर करने वाला। इसलिये इस जगत् के अन्दर गुरु ज्ञान-दाता है। लेकिन इस जगत् का जो आधार है, सर्वाधार है, उसे भी गुरु कहते हैं।

गुरुदेवजगद् व्याप्तं ब्रह्मा - विष्णु - शिवात्मकम् ।
गुरोः परतरं नहिं किंचित् तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

गुरु नाम परमतत्त्व का है, मालिक का है। गुरु नाम ॐ का है। गुरु का मतलब बड़ा। इस जगत् में उससे बड़ा कोई नहीं और उससे छोटा भी कोई नहीं। इसलिये ऋषियों ने अनुभव करने के बाद कहा :—

महतो महीयान् अणोरणी यान्

मालिक क्या है ? मालिक बड़े से बड़ा है और छोटे से छोटा है। उस परमतत्त्व को कोई ईश्वर कहता है, कोई अल्लाह कहता है, कोई God कहता है। लेकिन हमारे ऋषियों ने उसे 'ॐ' कहा। 'ॐ' क्या है ? 'ॐ' इस जगत् में तीन रूपों में, तीन शक्तियों के रूप में प्रकट हो रहा है। वह तीन रूप हैं—ब्रह्मा, विष्णु और शिव। यह भौतिक जगत् कोटि-२ ब्रह्माण्ड उस मालिक का भौतिक शरीर है। अगर आप उसको पुरुष मानते हैं तो वह हमारे जैसा पुरुष नहीं। वह परमपुरुष है। परमपुरुष वह होता है जिससे हम विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। जब आप प्रार्थना करते हैं, तो जवाब आता है, चाहे आप हिन्दु हो या मुसलमान। वह परमपुरुष है। उस परमपुरुष का एक स्वरूप है—यह भौतिक जगत्। इसलिये हमें भौतिक जगत् से नफ़रत नहीं करनी चाहिए। वेदान्ती कहते हैं कि यह जगत् कुछ नहीं है मिथ्या है और खुद ही इस जगत् में सबसे ज्यादा फँसे हुए हैं। जगत् माया है, प्रकृति है। यह उस मालिक की योगमाया है। उसका अंग है, उसका प्रसार तथा फैलाव है। यह उस मालिक की पत्नी है। यह जगत् उसकी शक्ति है और वह स्वयं शक्तिमान् है। बिना शक्ति के शक्तिमान् नहीं है। शक्ति किसकी ? शक्ति—शक्तिमान् की है। अरे माया और ब्रह्मा का झगड़ा क्या है ? दोनों एक

हैं। शिव के बिना शक्ति नहीं। रामायण में राम अवतार की बड़ी अच्छी कथा बताई गई है। जब परमतत्त्व मनुष्य के रूप में आता है, तो देवता भी उसके दर्शन करते हैं। सीताहरण के बाद जब राम-लक्ष्मण तपस्वी के वेश में सीता को ढूँढ़ रहे थे, मनुष्य जैसा व्यवहार कर रहे थे, उस समय शंकर, भवानी उधर से गुज़रे। शंकर ने साक्षात् श्री राम को दण्डवत् प्रणाम किया। भवानी ने कहा, "प्रभो! आप त्रिलोकीनाथ हैं, आपने इन तापस-कुमारों को प्रणाम किया। शंकर ने कहा, भवानी! यह तापसकुमार नहीं हैं। यह तो मनुष्य के चोले में साक्षात् परमतत्त्व का अवतार है। यदि तुम्हें इनके परमतत्त्व होने में सन्देह है, तो तुम जाकर इनकी परीक्षा ले लो।" भवानी परीक्षा लेने गई। उन्होंने सीता का रूप धारण किया। राम और लक्ष्मण ने प्रणाम करके कहा, "भवानी शंकर के बिना यहाँ कैसे? तब भवानी को पता चला कि यह तो वास्तव में परमतत्त्व के अवतार हैं। भवानी अनेकों लोक-लोकान्तरों में भागती रहीं। हमारे यहाँ लोक-लोकान्तर है। आज इस बात को विज्ञान भी मान रहा है। अनेक पृथ्वियाँ हैं, अनेक सौर-मंडल हैं। हमारी इसी आकाशगंगा के अन्दर करोड़ों सौर-मंडल हैं। हर सौरमंडल का अपना-२ ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। हरएक आकाशगंगा का ब्रह्मा, विष्णु, शिव है। ब्रह्मा भौतिक जगत् का शरीर है अर्थात् प्राण है। विष्णु मानसिक जगत् का प्राण है और शिव आत्मिक जगत् का प्राण है। भवानी ने देखा कि सब जगह ब्रह्मा, विष्णु और शिव अलग-2 हैं। लेकिन राम एक है। भवानी वापिस शंकर के पास आई और नमस्कार किया। शंकर ने कहा, "भवानी! परीक्षा ले ली?" भवानी ने कहा, "मैं केवल नमस्कार करके आ गई।" भवानी ने झठ बोल दिया।

तुलसी दास जी ने लिखा है :—

यद्यपि न प्रकट कहेऊ भवानी।
शिव अन्तरयामी सब जानी ॥

अब शंकर ने प्रण किया कि उनकी पत्नी ने उनके इष्ट की पत्नी का रूप धारण कर लिया था इसलिये वह अब उनकी पत्नी नहीं हो सकती। उनका अब पति-पत्नी का सम्बन्ध नहीं रह सकता। तब आकाशवाणी हुई "शंकर! तुम धन्य हो।" शंकर के व्यवहार से भवानी हैरान थी। भवानी ने जब कारण पूछा तो शंकर ने कह दिया कोई बात नहीं है। अब शंकर हज़ारों वर्षों तक समाधि में बैठे रहे। जब वह समाधि से उठे तो शंकर हज़ारों वर्षों की समाधि के बाद भवानी शंकर के पास गई। उनकी सेवा की और कहा, "मेरे पिता यज्ञ कर रहे हैं, मैं वहाँ जाना चाहती हूँ।" शंकर ने कहा, "बिना बुलाये नहीं जाना चाहिए। अगर तुम जाना ही चाहती हो, तो चली जाओ।" भवानी अपने पिता के घर गई। वहाँ उन्होंने देखा कि सभी देवताओं की पूजा हो रही थी, लेकिन शंकर की पूजा नहीं हो रही थी। वह इस अपमान को सहन नहीं कर सकी और भवानी ने योगाग्नि से अपने आपको वहीं जला डाला। भवानी शिव के बिना नहीं रह सकीं। शक्ति शक्तिमान् के बिना नहीं रह सकीं। फिर भवानी ने हिमालय के घर जन्म लिया और कठोर तपस्या करके, शंकर को प्राप्त किया। शक्ति और शक्तिमान् में भेद करना, माया और ब्रह्म में भेद करना ग़लत है।

माया ब्रह्म का भेद है न्यारा, भेदवाद है भरम कथा।

यह शब्द दाता दयाल जी महाराज ने लिखा है। यहाँ पर मेरे बहुत से बुद्धिजीवी मित्र बैठे हैं। उनको पता नहीं है कि राधास्वामी मत क्या है? राधास्वामी कोई फिरका

नहीं है। राधास्वामी परमतत्त्व का नाम है। राधास्वामी मत सनातन धर्म की आखिरी सीढ़ी है। माया ब्रह्म क्या है? माया ब्रह्म की रचनात्मक शक्ति है, जिसके द्वारा परम-तत्त्व जगत् की सृष्टि अर्थात् उत्पत्ति करता है, उसका पालन करता है और उसका संहार करता है अर्थात् ब्रह्म का ब्रह्मा पहलू; विष्णु पहलू और शिव पहलू परमतत्त्व की माया एवं पत्नी है। यदि हम ब्रह्म को पाना अर्थात् परमतत्त्व पर पहुँचना चाहते हैं, तो माया के माध्यम से ही पहुँच सकते हैं। यदि हम ब्रह्म को प्रसन्न करना चाहते हैं, तो हमें माया से नफ़रत नहीं करनी चाहिए।

लोग कहते हैं "ब्रह्म को प्रसन्न करो।" क्या आप प्रकृति से नफ़रत करके, ब्रह्म को प्रसन्न कर सकते हैं? यदि आप कहें कि महाराज जी! आप तो बहुत अच्छे हैं, सत्संग बहुत अच्छा देते हैं लेकिन आपकी पत्नी अच्छी नहीं है, तो अब आप सोचो कि इन्सान होने के नाते वह कैसे मेरी दया का पात्र बन सकता है? दाता दयाल जी महाराज हमारे समय के बहुत बड़े अवतार हुए हैं। उन्होंने तीन हज़ार से ज्यादा पुस्तकें लिखीं। उन्होंने हर धर्म पर पुस्तकें लिखीं और अन्त में बताया कि सारी दुनिया असल और नकल में हिन्दू है। उनके शिष्य हुए पंडित फकीर चन्द जी महाराज। मैं तो दर्शनशास्त्र का प्रोफेसर था। मैंने कई किताबें लिखी थीं। बीस साल अमेरिका में पढ़ाया। मेरा बचपन से ही शिव इष्ट था। भक्तिमय जीवन था। मस्ती में रहता था। मुझे अभिमान नहीं था, लेकिन मैं इन्सान को गुरु मानने के पक्ष में नहीं था। मैं उस समय तक परम दयाल जी महाराज को नहीं मिला था। मालिक की मुझ पर बड़ी कृपा थी। लोगों का व्यवसाय और जीवन का लक्ष्य अलग-२ होता है, जिससे भजन करने का समय ही नहीं मिलता। लेकिन मेरा तो व्यवसाय भी वही था, जो

जीवन का लक्ष्य था। मैं कालिज में सभी धर्म पढ़ाता था। मेरा व्यवसाय भी वही था और लक्ष्य भी वही था। इसी कारण से मैं बड़ी मस्ती में रहता था। 1957-58 की बात है, मैं जोधपुर में पढ़ाता था। जब मैं कक्षा में जाता था, तो कभी हाज़िरी का रजिस्टर ले गया और कभी भूल गया। लोग कहते थे कि यह शराब पीकर आते हैं। अरे शराब तो मालिक के प्रेम की थी। मैं उस समय सोहंग की मस्ती में रहता था। जोधपुर में एक महान् कालेश्वर का मन्दिर था। उस मन्दिर में मैं और मेरा चचेरा छोटा भाई प्रत्येक रविवार को जाते थे और तीन-चार घण्टे समाधि में बैठे रहते थे। ऐसी ही मस्ती में एक दिन अर्धजागृत अवस्था में एक दृश्य दिखाई दिया। उसमें परम दयाल जी महाराज का रूप प्रकट हुआ। उस रूप ने मुझे कहा, "तू मेरे पास आयेगा। तूने अपना ही कल्याण नहीं करना, बल्कि दूसरों का भी कल्याण करना है।" मैं इस दृश्य को भूल गया। समय आया जब मैं अमेरिका पढ़ाने के लिए गया। 25 सितम्बर 1963 में दिल्ली पहुँचा। वहाँ मेरे बहनोई स्वर्गीय रमेश चन्द्र शर्मा रहते थे। उन्होंने मुझसे कहा, "देहली में एक सन्त सत्संग दे रहे हैं। मैं शाम को जाऊंगा। क्या आप भी हमारे साथ चलेंगे? मैं यात्रा के कारण थका हुआ था, लेकिन उन्हें मना न कर सका। मैं और भाग्य उनके साथ सत्संग में गये। जब हम वहाँ पहुँचे, तो सत्संग हो रहा था। मैंने भाग्य को कहा, "यह तो वही सन्त हैं, जिनके दर्शन मैंने अर्धचेतनावस्था में किये थे।" जब हम आगे बढ़े तो परम दयाल जी महाराज ने कहा, "महान् शर्मा! आगे आओ।" मैंने सोचा कि मेरे बहनोई भी शर्मा हैं शायद उनको ही बुला रहे हैं, क्योंकि मुझे तो वह जानते ही नहीं थे। जब मैं उनके नज़दीक पहुँचा और मैंने नमस्कार किया,

तो उन्होंने मुझे उठा लिया और कहने लगे, "शर्मा ! मैं तेरा ही इन्तज़ार कर रहा था। आ यहाँ मेरे पास बैठ।" उन्होंने मुझे अपने गले की सारी मालाएँ पहना दीं। मैंने देखा कि परम दयाल जी महाराज अपने सत्संगों में सच्चाई बयान कर रहे थे। उसी समय एक सिन्धी महिला आई। कहने लगी, "बाबा ! तू धन्य है।" महाराज जी ने कहा, "माई ! क्या बात है ?" कहने लगी, "बाबा ! तीन महीने पहिले डाक्टरों ने मुझे कैन्सर बताया था। मैंने तेरी तस्वीर के आगे प्रार्थना की। तू प्रकट हो गया और कहा कि फलाँ-२ दवाई खा ले, तू ठीक हो जायेगो। मैंने वैसा ही किया और मैं ठीक हो गई।" महाराज जी ने कहा यह अज्ञान की बात है। माई ! तू इस भुलावे में मत रह कि मैं तेरे पास आया था। मुझे तो पता ही नहीं तू कहाँ रहती है। अरे मुझे दवाई का क्या ज्ञान ? तेरे अपने ही विश्वास ने मेरा रूप बनाकर तुझे दवाई बता दी और तू ठीक हो गई। जब मैं बीमार होता हूँ तो डाक्टर को बुलाता हूँ।" मैं इस सच्चाई को सुनकर हैरान रह गया। आजकल तो गुरु लोग कहते हैं कि अन्त समय में गुरु तुम्हें ले जायेगा अरे तुम्हें गुरु नहीं ले जायेगा। गुरु ने जो तुम्हें ज्ञान दिया है, वह ज्ञान तुम्हें ले जायेगा। वशर्ते नुम गुरु के बताये हुए रास्ते पर चलो। जिस दृष्टि से आप उस मालिक को याद करते हैं, उसी रूप में वह मालिक प्रकट हो जाता है। जब मैंने उनकी यह सच्चाई देखी तो मैं पूर्ण रूप से उनकी शरणागत हो गया। परम दयाल जी महाराज मनुष्य के रूप में परमतत्त्व थे। मैं आपको अपना अनुभव बता रहा हूँ। परम दयाल जी महाराज दाता दयाल जी महाराज के शिष्य थे। दाता दयाल जी महाराज ने तीन हज़ार से भी अधिक किताबें लिखीं। उन्होंने जो कुछ कहा, वह पूरा हो जाता था।

हज़ारों लोग उनके पास आते थे। उन्होंने 1900 से लेकर 1939 तक वह ज्ञान की गंगा बहाई कि लोग हैरान थे। उनकी पत्रिकाएँ लाहौर से निकलती थीं। उन्होंने सारी दुनिया को बता दिया कि आध्यात्मिकता क्या है? हालाँकि उन्होंने आगरा से राधास्वामी मत की दीक्षा ली थी फिर भी उन्होंने व्यापक दृष्टि को अपनाकर कहा कि राधास्वामी तो परमतत्त्व है। उनके सम्पर्क में आये परमसन्त परम दयाल पंडित फकीर चन्द जी महाराज। यह आठवीं कक्षा तक पढ़े थे। अपने गुरु दाता दयाल जी महाराज का उनसे मिलने से पहिले रूप देखते थे। उन्होंने दाता दयाल जी महाराज से कहा "आप मुझे वह परमतत्त्व बताओ, जिसके आधार पर आप कहते हैं कि वहाँ कोई नहीं पहुँचा। सारे मत कालमत हैं।" दाता दयाल जी महाराज ने कहा, "फकीर! तुम्हें कल बताऊंगा।" परम दयाल जी महाराज दूसरे दिन उनके पास गये। दाता दयाल जी महाराज ने उनको बैठाकर फूलों की माला पहनाई। एक नारियल और 5 पैसे उनको दिये, तिलक लगाया और अपना मत्था टेक कर कहा, "फकीर तू सद्गुरु वक्त है। तू लोगों को दीक्षा दिया कर और सत्संग कराया कर। तुझे सच्चा परमतत्त्व सत्संगियों के रूप में मिलेगा।"

परम दयाल जी महाराज बहुत अधिक ईमानदार थे। वह स्टेशन मास्टर थे। रिश्वत का आधा हिस्सा स्टेशन मास्टर को मिलता था। लेकिन वह कहते कि उन्हें छोड़कर सब आपस में बाँट लो। वह स्वयं रात को कुली का कार्य करते थे, क्योंकि तनखाह में गुज़र नहीं होती थी। एक बार अपने पिता से मिलने घर गये। आपके पिता पुलिस विभाग में थे। घर पर बैठे। रात को वापिस आने लगे। पिता ने कहा, "फकीरा खाना खा ले।" आपने कहा, "मुझे भूख

नहीं है" आपने बाहर जाकर ढाबे पर खाना खा लिया। किसीने उन्हें खाना खाते हुए देख लिया और इनके पिता मस्त राम जी से कहा "आपका बेटा फकीर ढाबे पर खाना खा रहा था।" पिता को बहुत दुःख हुआ। जब अगली बार आप घर गये तो पिता ने पूछा, "फकीर ! तुमने ढाबे पर खाना खाया, घर क्यों नहीं खाया ?" कहने लगे "पिता जी नाराज न हों, तो एक बात कहूँ। आपकी कमाई रिश्वत की है। इसलिये मैंने खाना नहीं खाया।" मस्त राम जी की आँखों में आँसू आ गये और उन्होंने रिश्वत लेनी छोड़ दी। उन्होंने अपने बाप को भी नहीं छोड़ा। मैं आपको सच कहता हूँ कि जब मैं उनसे पहिली बार मिला, तो मेरे सारे बदन में बिजली सी दौड़ गई। मैं उनका एक अनुभव आपको बताना चाहता हूँ।

पहिले विश्व युद्ध में आप बसरा-बगदाद गये, ताकि कुछ ईमानदारी से पैसा कमा लें। वहाँ स्टेशन मास्टर थे। लड़ाई समाप्त होने वाली थी। दीवानियां स्टेशन शत्रुओं ने तबाह कर दिया था। स्टेशन मास्टर को मार दिया था। वहाँ परम दयाल जी महाराज की नियुक्ति की गई। लड़ाई इतनी घमासान थी कि भारत की फौज के केवल 35 व्यक्ति ही बचे थे। दो घण्टे के लिए ही गोला-बारूद बचा था। कमाण्डर ने परम दयाल जी को कहा, "हैडक्वार्टर को तार करो कि यदि कल तक मदद नहीं पहुँची तो हम सब मारे जायेंगे।" उन्होंने एक तार हैडक्वार्टर को दिया और दूसरा अपने गुरु महाराज को। परम दयाल जी महाराज फ़रमाते हैं कि पाँच मिनट बाद गुरु महाराज प्रकट हुए और कहा, "फकीर चन्द ! तुम कोई चिन्ता मत करो। तुम कमाण्डर को कहो कि रात को शत्रु अपने मृतकों के शव लेने आयेंगे, कोई गोली न चलाये।" परम दयाल जी ने यह सन्देश कमाण्डर को दे दिया। बात

सच निकली। दूसरे दिन उन्हें मदद आ गई। लड़ाई भी समाप्त हो गई। सब लोग बगदाद आ गये। वहाँ दाता दयाल जी महाराज के बहुत से शिष्य थे। वह परम दयाल जी को दाता दयाल जी का रूप मानते थे। वह मिलने आये। उन्होंने परम दयाल जी महाराज को एक ऊँची जगह पर बैठाया और उनकी आरती उतारने लगे। परम दयाल जी ने कहा, "भई! तुम मेरी आरती क्यों उतारते हो? हमारे सबके गुरु दाता तो लाहौर में बैठे हैं।" सत्संगियों ने कहा, 'बात यह है कि हम लोग दस दिन पहिले शत्रुओं से घिर गये थे। हम वहाँ से भाग रहे थे।। अँधेरा होने के कारण रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था। आप प्रकट हुए और आपने हमें रास्ता दिखाया।" अब भेद खुला। परम दयाल जी महाराज ने सोचा, मैं तो समझ रहा था कि दाता दयाल उनके लिए प्रकट होते थे प्रकट होकर मुझे बचाते थे और यह लोग समझते हैं कि मैं इनके पास गया और इन्हें बचाया। इसका मतलब यह है कि न दाता दयाल मेरे पास आये न ही मैं इनके पास गया। यह तो कोई और ही शक्ति है।" परम दयाल जी महाराज की समझ में सच्चाई आ चुकी थी। मगर जब तक दाता दयाल जी महाराज जिन्दा रहे, उन्होंने इस भेद को नहीं खोला। लेकिन उनके परमधाम जाने के बाद सच्चाई बयान की। गुरु प्रकट नहीं होता। जो लोग कहते हैं। जो यह कहता है कि प्रकट होते हैं, वह ढोंगी है। गुरु का असली रूप तुम्हारे अन्दर है।

माया ब्रह्म का भेद है न्यारा, भेदवाद है भरम कथा।

लोग चक्कर में पड़े रहते हैं कि माया अलग है और ब्रह्म अलग है। मैंने आपको कहा न, शक्ति और शक्तिमान् एक है। शिव के साथ इ मिली हुई है। इ है स्त्री या शक्ति। शिव से यदि इ को निकाल दिया जाये, तो 'शव' ही रह

जायेगा। शव का मतलब मृतक शरीर होता है। बिना शक्ति के शक्तिमान् नहीं और बिना शक्तिमान् के शक्ति नहीं। न राधा के बिना कृष्ण है न कृष्ण के बिना राधा है। एक कवि ने कहा है :—

यदि न होता राधा का रकार।
तो राधे श्याम आधे श्याम रह जाते॥

राधास्वामी किसी आदमी का नाम नहीं है। राधा प्रकृति है, उस मालिक का फैलाव है और स्वामी परमतत्त्व है। दोनों हमारे अन्दर मौजूद हैं। इसी दृष्टि से उन्होंने यह शब्द लिखा है :—

माया ब्रह्म का भेद है न्यारा, भेदवाद है भरम कथा।
जो कोई उसका रूप पहचाने, भेदवाद है धरम कथा॥

माया ब्रह्म का भेद तो है, लेकिन बड़ा अजीब भेद है। अगर आप समझें कि माया बिलकुल अलग है और ब्रह्म अलग है, तो आपका यह भ्रम है। माया अर्थात् प्रकृति किसकी? प्रकृति पुरुष की है। सारा जगत् सुन्दर है। माया को आप भ्रम मत समझो। यह जगत् इसलिये है कि हम इस जगत् में आकर हर वस्तु में उसका अनुभव करें। कौन-सी वस्तु ऐसी है या कौन-सा मनुष्य ऐसा है, जिसके अन्दर वह मालिक मौजूद नहीं है।

अदम से जान बेहस्ती तलाशे यार में आये।
हवाये गुल में हम इस वादिये पुरखार में आये॥

मनुष्य का चोला देवताओं के चोले से ज्यादा कीमती है। क्योंकि मनुष्य के चोले में ही हम उस मालिक को, उस परमतत्त्व को देखने के लिए आये थे।

अदम से जान बेहस्ती तलाशे यार में आये।

हम तो इस जगत् में उस प्रीतम को ढूंढ़ने के लिए

आये थे, मगर हम जगत् के बाहरी आडम्बर में फँस गये। वह मालिक मनुष्य के रूप में मौजूद है।

अब आदमी कुछ और हमारी नज़र में है।
जब से सुना है यार लिबासे बशर में है॥

वह मालिक साक्षात् परमतत्त्व के रूप में मौजूद है। इस ज्ञान का, सच्चाई का जो अनुभव कराता है, उसे सद्गुरु कहते हैं। सद्गुरु वह है जिसको सत् का पूरा ज्ञान हो गया हो। वास्तव में, वह सब जगह मौजूद है। आप कहते हैं माया है और मैं कहता हूँ ब्रह्म है।

दृष्टि सृष्टि का सकल पसारा, जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।
भक्ति की दृष्टि जब आई, ईश्वरमयी हो गई सृष्टि॥

ईश्वर के सिवाय और कुछ नहीं है।

माया ब्रह्म का भेद है न्यारा, भेदवाद है भरम कथा।

यदि आप माया को बिलकुल अलग समझते हो, तो ग़लत है। अरे माया भी तो उसीकी है। आप उसके पास माया के ज़रिये जाओगे। माया ही तो प्रकृति है। भगवान् कृष्ण पूर्णेश्वर अवतार हुए हैं। वह सद्गुरु थे। यदि राधा-स्वामी का नमूना कहीं देखना है तो भगवद्गीता में देखो। भगवान् कृष्ण ने बता दिया कि परमतत्त्व मनुष्य के चोले में जब आता है, तो प्रकृति राधा' को अपने साथ लाता है। उन्होंने साबित कर दिया कि यह जगत् नफ़रत करने योग्य नहीं है। जब इससे प्यार करोगे, तब मालिक के पास जाओगे। परमतत्त्व इस जगत् के अन्दर मौजूद है। आप दुनिया के सब काम करते हुए भी मालिक के साथ मिले रह सकते हो। भगवान् कृष्ण ने यशोदा को उद्बोधन दिया। यशोदा प्रकृति है। उन्होंने प्रकृति से नफ़रत तो नहीं की। भगवान् कृष्ण के बचपन की एक झलक देखिये। आपको पता चलेगा कि यशोदा को किस प्रकार उद्बोधन दिया।

भगवान् कृष्ण ब्रज में घर-२ जाकर धूम मचाते थे। मटकियाँ तोड़ते थे, मक्खन चुराते थे। गोपियों के शिकायत करने पर यशोदा इस बात को सच नहीं मानती थी। एक बार भगवान् कृष्ण ने अपने ही घर की मटकियाँ तोड़ीं और मक्खन चुराया। यशोदा मैय्या ने रंगे हाथों पकड़ लिया। ग्वालबाल तो सब भाग गये, भगवान् कृष्ण पकड़े गये। मुँह पर मक्खन लगा था। यशोदा ने कहा, "गोपियाँ तेरी ठीक ही शिकायत करती थीं। भगवान् कृष्ण ने बड़े भोलेपन से कहा—

मैय्या मोरी मैं नहीं माखन खायो।
मैं बालक बँहियन को छोटो छींको किस विधि पायो॥

यह नहीं कहा कि मैं ग्वालों के ऊपर चढ़ा हुआ था। वे तो भाग गये और मैं पकड़ा गया। यशोदा ने कहा, "तेरे मुँह पर मक्खन लगा है।" कृष्ण ने कहा—

भोर भई गऊअन के पाछे, मधुबन मोहि पठायो।
चार पहर बंसीबट भटक्यो सांझ परे घर आयो।

अरे मैय्या! मेरे पास चोरी करने का समय कहाँ है। यदि यह साबित हो जाये कि जिस समय कत्ल हुआ था उस समय मुजरिम वहाँ नहीं था, तो वह छूट जायेगा। भगवान् ने फिर आगे कहा—

ग्वालबाल सब बैर परे-है, बरबस मुख लपटायो॥

लेकिन यशोदा ने यह बात भी नहीं मानी। फिर यशोदा के मन को झकझोर दिया।

हिय तेरे कछु भेद उपजत है, जान परायो जायो।
यह ले अपनी लकुटि कमरिया बहुत ही नाच नचायो॥

अब यशोदा की ममता को ठेस लगी। कहने लगी "तू सच्चा और मैं झूठी। तूने मक्खन नहीं चुराया।" सूरदास जी आगे कहते हैं—

सूरदास तब बिहँसि यशोदा पुनि २ कंठ लगायो॥

यशोदा ने कृष्ण को बार-२ गले से लगाया। फिर भगवान् कृष्ण ने अपना मुँह खोलकर दिखाया, तो सारी त्रिलोकी यशोदा को दिखाई दे गई। यशोदा को इस बात का ज्ञान हो गया कि कृष्ण परमतत्त्व के अवतार हैं। वास्तव में, भगवान् कृष्ण परमतत्त्व के अवतार थे। दुनिया की कोई भी चीज़ उन पर असर नहीं करती थी। उन्होंने मक्खन खाया और झूठ बोला कि नहीं खाया। लेकिन वह सच कहते थे कि मैंने मक्खन नहीं खाया। भगवान् कृष्ण को लीला पुरुषोत्तम कहा है। इसका अर्थ यह है कि उन्होंने अपने जीवन-चरित्र से यह साबित कर दिया कि मनुष्य अपनी ज़ाते पाक को पहिचान ले और सुरत को साक्षी समझकर अपने शरीर और मन के क्रियाकलापों पर दृष्टि डाले, तो उसे यह आभास हो जायेगा कि वह शरीर और मन से अलग है। शरीर भौतिक नियमों के आधीन काम करता है, और मन भी सत्, रज, तम से प्रभावित होकर दु:ख-सुख आदि का अनुभव करता है। शरीर और मन के अनुभवों को अपने निज स्वरूप के अनुभव मान लेना भारी भूल है। जो व्यक्ति साक्षी भाव में रहता है, वह जानता है कि उसकी विशुद्ध आत्मा हर समय शरीर और मन से अछूती रहती है। जब वह अपने जीवन में ऊँची दृष्टि को अपनाकर शरीर और मन की सापेक्षताओं को एक लीला मात्र समझ लेता है, उसे किसी प्रकार का दुनिया की दृष्टि से अच्छा या बुरा कर्म बन्धन में नहीं डालता। जब भगवान् कृष्ण ने यशोदा को यह बता दिया कि यदि उनके शरीर ने मक्खन खाया तो भी उनकी आत्मा उस कर्म में आसक्त नहीं थी। उनके सारे जीवन से यह प्रमाणित होता है कि माया के जगत् में रहते हुए साधक उसी प्रकार शारीरिक और मानसिक अभावों से अछूता रहता है, जिस प्रकार कमल

का फूल कीचड़ और पानी में रहता हुआ भी उन दोनों से अछूता रहता है।

किन्तु यह ज्ञान पुस्तकों के पढ़ने से प्राप्त नहीं होता, बल्कि गुरु के सान्निध्य में रहकर इस ज्ञान को जीवन पर लागू करने से और अपनी रहनी को बदल देने से ही प्राप्त होता है। इसलिये जीवित गुरु की ज़रूरत होती है। सद्गुरु का कोई ख़ास नमूना नहीं होता। वह ज्ञान में रहता है। मैं उसके ज्ञान को गीत कहता हूँ अर्थात् गीता। भगवान् कृष्ण का जीवन गीतामय था। वह उसमें रहते थे। इसी प्रकार स्वामी जी महाराज ने एक पद्य लिखा है।

राधास्वामी गायकर जनम सुफल कर ले।
यही नाम निजधाम है, चित अपने धर ले।

गाय का मतलब है उसके अन्दर रहना। मेरा जीवन शुरू से ही गीतामय था। लोग गीता पढ़ते हैं, गीता का हवाला देते हैं, लेकिन उनका जीवन गीतामय नहीं होता। मैं उसको गाता था। गाने का मतलब है कि अपने ज्ञान सुना और उसको अपने अन्दर उतार लिया, यह असली ज्ञान या असली गाना है। सबके अन्दर राधा भी वही है और स्वामी भी वही है। अब सोचिये कि नफ़रत किससे की जाये, जो उसको जान गया, उसकी रहनी बदल गई।

ज्ञान दीजे ज्ञान दाता, ज्ञान के भण्डार से।
सहज छुटकारा मिले, सबको कठिन संसार से।।

यहाँ पर ज्ञान देने का मतलब जुबानी जमा-खर्च नहीं है बल्कि शिष्य को ऐसी प्रेरणा देना है कि उसकी करनी रहनी में बदल जाये। गुरु का मतलब ज्ञान है और सद्गुरु का मतलब वह असली ज्ञान है, जो सत् है, हमेशा रहने वाला है और जीवन को हमेशा के लिए एक ख़ास मोड़ दे देता है। ज्ञानदाता गुरु इसलिये महान् है कि वह शिष्य को

जीवन्मुक्ति की अवस्था पर पहुँचा देता है। केवल विचार करने से या कल्पना मात्र से सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं होता। उसको जीवन में उतार देने से ही जगत् के द्वन्द्व से सहज छुटकारा मिल जाता है।

कहने को तो बन्ध मुक्ति कल्पना मन की सही।
बिन दया सतगुरु के वह मिटते नहीं हैं जीते जी॥

अब वही बात है न, ये बन्ध मुक्ति, माया कल्पना है। कहने को तो कह दो, लेकिन जब तक ऐसे व्यक्ति से सम्पर्क नहीं होता जो उस अवस्था में रहता है, तब तक अनुभव नहीं होता है। 'बिन दया सतगुरु' दया का मतलब है प्रेम। दया तब होगी, जब आप उससे प्रेम करोगे तब सद्गुरु अपने अनुभव को बहा देगा।

नाम का दे आसरा चरणों में अपने लीजिये।
शब्द की महिमा बताकर अपना सेवक कीजिये॥

यह मालिक को कहा जा रहा है। वह परमतत्त्व मनुष्य के चोले में अपना कर्त्तव्य निभाता है और उन लोगों को ऊपर ले जाता है जो उस पर अपना जीवन न्यौछावर कर देते हैं। 'नाम का दे आसरा' नाम क्या है? नाम है सुमिरन भजन। आप कोई भी नाम ले लें। नाम के जपने से मन टिक जाता है, जिससे आपके मन की शक्ति बढ़ जाती है और आपकी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं। आपको नाम जपने के लिए दिया जाता है लेकिन असली नाम का जपना वह होता है, जब आप उसमें रहने लग जाओगे। इस रहनी से आप सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, निंदा-स्तुति से ऊपर उठ जाओगे। नाम रास्ता है।

नाम का दे आसरा, चरणों में अपने लीजिये।

अब लोग चरण छूते हैं। मुझे चरण छुआने का कोई शौक नहीं। मैं ब्राह्मण हूँ। हमारे घर बड़े-२ लोग आकर

पैर छूते थे। पैर छूने का मतलब है अहंकार को दूर करना। अहंकार दूर होते ही मनुष्य स्वयं मालिक बन जाता है।

पहिचान ले अपने को तो इन्सान खुदा है।
ज़ाहिर में है गौ खाक मगर खाक नहीं है॥
जलवों की ख़ता क्या जो दिखाई नहीं देते।
खुद देखने वालों की नज़र पाक नहीं है॥

नज़र पाक का मतलब है कि हमारे अन्दर अहंकार है उसे समाप्त करना। किसीको पैसे का अहंकार है, किसी-को ज्ञान का अहंकार है, किसीको पद का अहंकार है। जब तक अहंकार नहीं हटता, हमें उस मालिक का ज्ञान हासिल नहीं होता, उसकी नज़र पाक नहीं होती। जब मनुष्य अपने अहंकार को हटा देता है, तब मालिक उसका अहंकार बन जाता है। मैं एक मिसाल हमेशा दिया करता हूँ। हम मन्दिर में जाते हैं, पैसा-दो पैसा, रुपये आदि चढ़ाते हैं। वह सारे जगत् का मालिक है। क्या उसको हमारे पैसे की ज़रूरत है? अरे यह पैसा भी उसीका दिया हुआ है। क्या कोई ऐसी चीज़ है, जो उसकी नहीं दी हुई है? मैं यह नहीं कहता कि आप दान मत दो। दान देने से मन पवित्र होता है। हम उस मालिक को वह चीज़ दें, जो हमारी है। हमारी क्या चीज़ है? हमारी चीज़ है 'मैं'। यह 'मैं' हमने स्वयं बनाई है। जब भक्त अपनी 'मैं' भी मालिक को दे देता है और कहता है कि हे मालिक मैं कुछ नहीं हूँ, जो कुछ हैं, वह आप ही हैं, तब मालिक देखता है कि इसने पहिले धन दे दिया, परिवार और सन्तान की तरफ ध्यान नहीं दिया, अब इसने 'मैं' भी छोड़ दी, अरे दुनिया की 'मैं' इसे कुचल डालेगी, मालिक उसकी मैं बन जाता है और उसके सभी काम मौज करती है। यह मतलब है चरणों का। चरणों में झुकने का मतलब है कि एक जगह से तो 'मैं' को

हटाओ। दुनिया में 'मैं' रखो, लेकिन गुरु के सामने से तो 'मैं' को हटाओ। आपकी 'मैं' हटी नहीं और मालिक आपके अन्दर आया नहीं।

सच्चिदानंदम् अखण्डम् केवल निज रूप हो।
निज दया से जाय दुखदाई महाभव कूप खो॥
आपका है आसरा और आपका विश्वास है।
राधास्वामी तारिये यह भी तुम्हारा दास है॥

सच्चिदानंदम् अखण्डम्—सत्, चित्, आनन्द और उसका आधार अखण्ड है। सत् अ है, चित् उ है और आनन्द म है। शरीर सत् है, मन चित् है और आत्मा आनन्द है और चौथी चीज़ जो अविनाशी तत्त्व है, वही मालिक है जो तुम्हारे अन्दर बैठा है। वह असली मालिक है। सच्चिदानंदम् अखण्डम्, उसके ज्ञान से, उसके साथ मिल जाने से, भव के अन्दर जो तीन चीज़ें हैं शरीर का दुःख, मन का शोक और आत्मा का अज्ञान,चले जाते हैं, तब अखण्ड मालिक से रिश्ता हो जाता है। आगे क्या कहा ?

राधास्वामी तारिये, यह भी तुम्हारा दास है।

राधास्वामी आपके अन्दर बैठा हुआ परमतत्त्व है।

आपका है आसरा और आपका विश्वास है।

बात इतनी सी है कि वह मालिक आपके अन्दर मौजूद है। आप मेरे इष्ट हों। लोग कहते हैं कि आपका रूप प्रकट हुआ, मैं तो होता नहीं। मैं जानता हूँ कि आपके अन्दर मन को इतनी शक्ति है कि आप उस शक्ति से मेरा रूप प्रकट कर लेते हो। लेकिन आपके अन्दर इससे भी ऊँची एक और चीज़ है और वह है परमतत्त्व। आप मेरे रूप को मेरी छाया मानकर प्यार करते हो और बड़े-२ चमत्कार कर लेते हो, यदि मुझे परमतत्त्व मानकर प्यार करोगे, तो सोचो कहाँ जाओगे। इस सच्चाई से आपका विश्वास बढ़ता है। लेकिन अपने पर विश्वास नहीं होता न। पहिले आदमी अन्तर्मुखी नहीं हो पाता, इसलिये दूसरों का सहारा लेना पड़ता है।

इसीलिये कहा है—

आपका है आसरा और आपका विश्वास है।

जो मेरे में विश्वास कर रहा है वह वास्तव में अपने में विश्वास कर रहा है। लोग कहते हैं कि महाराज जी आप ही जानें, इतना कहने से उनके काम बन जाते हैं, क्योंकि उनके अन्दर शक्ति है। पहिले किसी को अपना इष्ट बना लो। एक पुजारी पत्थर की मूर्ति गढ़वाकर मन्दिर में लगाता है, उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करता है। उसकी इच्छाएँ पूरी होती हैं। पुजारी यह तो नहीं कहता कि तू पत्थर है। मैंने तुझे गढ़वाया था। अगर पत्थर की मूर्ति को मान करके इच्छाएँ पूरी हो सकती हैं, तो जीती-जागती मूर्ति को मानने पर घाटा नहीं होगा। वह तो बोलती है। यदि गुरु सच्चा है, तो सोने पर सुहागा है।

राधास्वामी तारिये यह भी तुम्हारा दास है।

अब दास का मतलब नीचा नहीं है। मैंने आपको बताया कि दास तब होता है जब उसका अहंकार चला जाता है। वह दास-दास नहीं रहता, बल्कि स्वामी बन जाता है, खुद मालिक हो जाता है।

अन्त में मैं आपकौं कबीर साहिब की ज़िन्दगी की एक बात और कहना चाहूंगा। जब अवतार आता है और जिस माहौल में आता है उस माहौल के अनुभव के मुताबिक मिसालें देकर बताता है कि मालिक क्या है? उन्होंने भी एक पद्य के माध्यम से बताया—

झीनी-२ बीनी चदरिया

हमारा शरीर और मन हमारे कर्मों से बना है। आगे बताया कि हमने अपनी चादर कैसे बनाई।

कौन का ताना कौन की भरनी, कौन तार से बीनी।
इंगला पिंगला ताना भरनी सुषमन तार से बीनी चदरिया॥

हमने पिछले जन्मों में जो अच्छे-बुरे कर्म किये थे,

उन्हीं कर्मों के कारण हमें यह शरीर और परिस्थिति मिली।

अष्टकमल दल चरखा डोले, पाँच तत्त्व गुन तीनी।

अष्टकमल दल अर्थात् विष्णु की नाभि से ब्रह्मा निकला। पाँच प्रकार के तत्त्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और तीन गुण-सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण—इससे जगत् बनाया और मनुष्यों की चादर बनाई।

साँई को सियत मास दस लागे, ठोंक-२ के बीनी चदरिया।

मास दस का मतलब है—पाँच स्थूल तत्त्व और पाँच सूक्ष्म तत्त्व। स्थूल तत्त्वों से शरीर बनता है और सूक्ष्म तत्त्वों से मन बनता है। मनुष्य का शरीर तो सूक्ष्म और स्थूल दोनों हैं, लेकिन देवताओं का केवल सूक्ष्म शरीर है। मालिक ने हमारा रूप अलग बनाया और देवताओं का अलग बनाया।

यह चादर सुर नर मुनि ओढ़ी,ओढ़ के मैली कीन्ही चदरिया।

देवताओं की चादर मैली क्यों हुई? क्योंकि उनमें स्वार्थ आ गया। उन्होंने मन्थरा की बुद्धि भ्रष्ट करने के लिए शारदा को भेजा। ताकि भगवान् राम वन में जायें और उनका काम बन जाये।

सुर नर मुनि सबकी यह रीति।
स्वारथवश करिहों सब प्रीति॥

दास कबीर जतन कर ओढ़ी,ज्यों की त्यों रख दीन्ही चदरिया।

लेकिन कबीर साहिब ने चादर को ज्यों का त्यों रख दिया। जब कबीर दास से साहिब बन गये तब लिखा—

साहिब कबीर जतन कर ओढ़ी, ज्यों की त्यों रख दीन्ही।

दास मालिक हो गया। जब आप दास बनते हो, तो आप मालिक बन जाते हो। जब आप झुकते हो तो मालिक आपके अन्दर आ जाता है। यही सन्तमत है और सनातन धर्म की पराकाष्ठा है। इस रास्ते पर चलने से लोक और परलोक दोनों बन जाते हैं। आज का सत्संग मैं यहीं पर समाप्त करता हूँ। सबको राधास्वामी!

गायत्री मन्त्र का छन्दोबद्ध रूपान्तर

परसन्त हजूर मानव दयाल जी महाराज

(हजूर मानव दयाल जी महाराज का कहना है कि 'राधास्वामी मत' कोई एक अलग धर्म या सम्प्रदाय नहीं है, बल्कि वह सनातन धर्म की ही अन्तिम कड़ी है। अतः गायत्री मन्त्र भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि सन्त-मत का राधास्वामी मत)।

हे प्रणव ! तू ब्रह्मा, विष्णु ज्योति का आधार है।
तू है शिव ज्योति, जो भवसागर से करती पार है॥
बिन्दु तीनों ज्योतियों का, केन्द्र शब्द आधार है।
अतः काम और मोक्ष दोनों का तू भण्डार है॥
भूः है तू, पृथ्वी है तू, तू गणेश की दिव्यता।
तू भुवः है, तू ही मन है और चन्द्रमा की आत्मा॥
स्वः है तू और तू ही सौरमण्डल का प्राणाधार है।
महः में ज्योति है तेरी, सब मण्डलों का सार है॥
जनः ज्योति आकाश गंगाओं से रहती पार है।
तपः शक्ति कोटि ब्रह्माण्डों का सर्वाधार है॥
सत्य स्तर पर तू है, सब कुछ सत्ता और प्राण है।
तेरी इस अनन्तता से, होता सब का त्राण है॥
तू है सब कुछ आदि अन्त, और मध्य भी तू है प्रभो।
तेरी आदि ज्योति सबके, रहती पार है विभो॥
हे प्रभो उन ज्योतियों की ज्योति का संचार कर।
सद्बुद्धि देकर सबको, सब ही को भव से पार कर॥
यह हमारी प्रार्थना है, तेरे चरणों में सदा।
माया मोह से मुक्त कर दे, दे के भक्ति सम्पदा॥

1981 की वैसाखी के अवसर पर परमसन्त हज़ूर मानव दयाल जी के शुभ आगमन पर

परम श्रद्धालु (स्वर्गीय) श्री दरवेश जालन्धरी के मार्मिक उद्गार

(1) तुम्हीं हो सही जानशीने फकीर ।
तुम्हीं पर था पूरा यकीने फकीर ॥
ऐ दरवेश मुरशिद ने बख्शीश से अपनी ।
अदा कर दी तुझको ज़मीने फकीर ॥

(2) तुम्हीं हो सही तरजमाने फकीर ।
असल सरवश कारवाने फकीर ॥
करो रहनुमाई, रहरखाने हक की ।
इसीसे है दरवेश शाने फकीर ॥

(3) तुम्हीं बागन गुलस्ताने फकीर ।
तुम्हीं रौनके आस्ताने फकीर ॥
तुम्हीं हो अब दरवेश संगत के वाली ।
तुम्हीं दरअसल हो निशाने फकीर ॥

(4) तुम्हीं हो असल राज़दारे फकीर ।
तुम्हीं से है रौनक दआरे फकीर ॥
तुम्हीं से यह भरोसा है दरवेश सबको ।
मुजस्सर तुम्हें इख्तियारे फकीर ॥

मुरशिदे कामिल ने अब तुझको भी कामिल कर दिया ।
बख्श कर शवाले अमल आलिम से आलम कर दिया ॥
आई० सी० शर्मा, शुक्रिया कर, उसी दरवेश का ।
जिसके अव्वल में वह खुद है,उसमें शामिल कर दिया ॥

'भाव सुमन'

परमसन्त हजूर मानव दयाल पण्डित ईश्वर चन्द्र जी शर्मा की सेवा में श्री शिव उपाध्याय की एक रचना

पण्डित जी के चरण कमल में, वंदन करने आये।
डिगे नहीं विश्वास हमारा, भाव यही भर लाये॥
तन, मन, धन सब गुरु सेवा में, अर्पित करने वाले।
मानवता की राह दिखा कर, मनसा हरने वाले॥
नव-जीवन, विश्वास, दयामय, दिया आपने प्यारा।
वन्दनीय, अभिनन्दनीय है, वचनामृत की धारा॥
दया दान देकर कितनों को, अपने हृदय लगाया।
याद रहेगा सदा साधना-स्वर में भी जो गाया॥
लक्ष्य विश्व-कल्याण आपका, सतत सनातन धर्मी।
जीवन की हर डगर सुहानी, करने वाले मर्मी॥
संकट हमारा भव सागर से, प्रभुवर पार लगाना।
महिमी से सदा समाहित, एक रूप हम जाना॥

ऊँच-नीच का भेद-भाव मानवता के नाम एक कलंक है

श्री सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव—सम्पादक 'सहज जीवन'

वह दिन दूर नहीं, जब एक-दो नहीं, अपितु समस्त विश्व के मानव रूहानियत की दौड़ लगायेंगे। इसकी शुरू-आत हो चुकी है। बुद्धिजीवी वर्ग अब इसका महत्त्व समझने लगा है। संसार में प्रदूषण बड़ी तेज़ी से बढ़ रहा है। सभी सुख-सुविधाओं के होते हुए भी आज मानव बहुत ही परेशान तथा अशान्त है। शान्ति के लिए जो काम हमें कल विवश होकर करना पड़ेगा, क्यों न हम उसे आज हीं आरम्भ कर दें, जिससे कि हमारा जीवन सहज जीवन हो जाय।

गुरुश्रेष्ठ परमसन्त परम दयाल जी महाराज ने तो अपना सारा जीवन 'मानव' की सेवा में लगा दिया। उन्होंने 'मनुष्य बनो' की आवाज़ उठाई, जिसे हम विश्व में जन-जन तक पहुँचायेंगे। वह मानवमात्र के हमदर्द थे और किसी विशेष पन्थ से जुड़े हुए नहीं थे। क्योंकि मनुष्य के संस्कार किसी विशेष धर्म या पन्थ के साथ जुड़े हुए होते हैं, इसलिये इन्हीं संस्कारों के वशीभूत होकर आम आदमी अपने पन्थ अपने धर्म को ऊँचा साबित करने के लिए, अन्य धर्मों की उपेक्षा कर देता है। यह तो सभी जानते हैं कि किसी भी धर्मग्रन्थ में यह बात नहीं लिखी है जो आदमी को ग़लत आदतों या व्यसनों का शिकार बना दे। किसी भी धर्मग्रन्थ में ऐसा नहीं लिखा है कि व्यक्ति लूट, खसोट, चोरी या हेराफेरी करे।

सिक्ख, हिन्दु, मुसलमान, ईसाई सभी एक ही खुदा के बन्दे हैं। आप किसी भी सम्प्रदाय, धर्म या जाति के क्यों

न हों मानवता धर्म को अपना सकते हैं। जीवित रहते हुए भूखे व्यक्ति को रोटी का एक टुकड़ा न देकर, मरने के बाद उसके क्रियाकर्म पर इतना खर्च करना कहाँ का न्याय है ? यदि जब वह भूखा था, उस समय उसे रोटी दी गई होती, तो वह मरता नहीं। जो होना चाहिए, वह हो नहीं रहा। अतः समाज के विचारों को बदलने की सख्त ज़रूरत है। ऊँच-नीच का भेद-भाव मनुष्यता के नाम पर एक बहुत बड़ा कलंक है। यह कितनी विडम्बना है कि मनुष्य सत्य को जानते हुए भी उसे स्वीकार करने को तैयार नहीं है। 'मानव' को 'मानव' ही समझना चाहिए, उसे उसकी ही आत्मा का प्रतिविम्ब समझना चाहिए, अपना ही स्वरूप समझना चाहिए। तब सारे के सारे झगड़े स्वतः समाप्त हो जायेंगे।

हज़ूर परम दयाल जी महाराज
तथा
हज़ूर मानव दयाल जी महाराज की महिमा

श्री सरदारी लाल सेठी, जनरल सेक्रेटरी,
मानवता मन्दिर, होशियारपुर।

हज़ूर परम दयाल जी महाराज एक सच्चे सन्त अवतार थे। वह मनुष्य के चोले में साक्षात् परमतत्त्व के अवतार थे। उन्होंने हमें यह बात बताने की पूरी कोशिश की कि परमतत्त्व, परमपुरुष सभी रूपों तथा रंगों से परे है। इसलिये मानवमात्र को चाहिए कि वह हर प्रकार के पक्षपात से ऊपर उठकर, धर्मों के परस्पर झगड़ों को समाप्त कर दे। यह तब सम्भव हो सकता है, जब हम अपने मन को परस्पर

पवित्र और शुद्ध रखें और निराशावादी विचारों को त्याग दें। परमतत्त्व के अवतार हजूर परम दयाल जी महाराज ने अपने सत्संगों में लोक तथा परलोक, दोनों को सुधारने के लिए अनेक उच्च विचार मोतियों की भाँति हमारे सामने बिखेर दिये हैं। उन्होंने इस बात पर बहुत ज़ोर दिया कि परमतत्त्व आधार एक ही है उसके रूप भले ही अनेक हैं। इसलिये यदि आपको सच्चे मालिक से मिलना है, तो अनेक रूपों को छोड़कर, एक को मानकर चलो। उन्होंने बताया कि यदि आप संसार में सुख से जीना चाहते हैं, तो अपने मन की शक्ति का प्रयोग करें, अपने इष्ट की मूर्ति पर ध्यान लगायें, उससे शक्ति प्राप्त करके जीवन को सफल बनायें।

मैं एक सामान्य सत्संगी हूँ। मैं न तो विद्वान् हूँ, न ज्ञानी और न सन्त। मैंने परम दयाल जी महाराज के बारे में जो समझा है, उसका श्रेय परमसन्त हजूर मानव दयाल जी को है। मानव दयाल जी महाराज सच्चे फकीर के सच्चे उत्तराधिकारी हैं। उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन के अनुभव के आधार पर, परम दयाल जी महाराज के अनुभवों तथा शिक्षा को इतना स्पष्ट कर दिया है कि साधारण से साधारण मनुष्य भी उनके सत्संगों को सुनकर वैराग्य की अवस्था का अनुभव करने लगता है। उनके सत्संगों को सुनने से ऐसा वातावरण पैदा हो जाता है, जिसमें सत्संगी अपने आपको भूल जाते हैं और एक प्रकार की समाधि का अनुभव करने लगते हैं। परम दयाल जी महाराज की जीवनभर की खोज का जो सबसे अनमोल रत्न हमें मिला है, वह हैं हजूर मानव दयाल जी महाराज।

परमसन्त पवित्र पुण्य, पुनीत विभूति राय सालिगराम साहिब बहादुर और परम पूज्य दाता दयाल महर्षि शिवब्रत लाल जी वर्मन की सेवा में

भेंट

ऐ परमतत्त्व ! तू कौन है, क्या है ? मैं कुछ नहीं कह सकता, मगर तू है ज़रूर। जब तक बुद्धि के खेल हैं तू है, मगर तू मुझसे भिन्न नहीं है।

समझ विवश है, बुद्धि लाचार है, मन अमन है, चित्त अचित्त है, मानो ब्यान करने की शक्ति ने गूँगे के गुड़ की हालत बना रखी है। फिर भी, क्योंकि होश है, प्रेम करूंगा।

ऐ ज़ात ! ऐ मेरे आधार ! ऐ मेरे इष्ट ! अकाल, दयाल, अनाम राधास्वामी ! कूटस्थ, सत्तामात्र और शब्द के आधार ! 'मैं' 'तुम्हें' 'तू मैं और वह' का निर्णय करने वाली हालत में प्रेम करता हूँ। ऐ दया के सागर ! इस जीवन में तेरी लगन थी। समझ गया, अकली, अनुभव और हर प्रकार से समझ गया। मगर वह समझ भी बेसमझी में तबदील हो रही है।

यह बारहमासा की व्याख्या आप ही की भेंट करता हूँ, क्योंकि आप ही ने यह जनून दिया। आप ही स्वप्न में आये, आप ही ने फ़रमाया कि वह पवित्र, पुनीत विभूति आप ही थे। इसलिये मैं आप ही के दिये हुए संस्कार को भेंट के रूप में अति श्रद्धा, भक्ति, विश्वास और प्रेम के साथ आप ही को अर्पण करता हूँ और अपने अस्तित्व को खोता हूँ।

फकीर
18 रेलवे मण्डी,
होशियारपुर।
13 अक्तूबर 1941

परमसन्त परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज के कुछ विशेष पत्र यहां वैसाखी के अवसर पर प्रस्तुत किये जा रहे है ।

स्वर्गीय प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी के नाम एक पत्र ।

भारतमाता : इन्दिरा गान्धी के रूप में :

मैं सच्चे दिल से भारतमाता के चरणों में प्रणाम करता हूँ । होश भई, दुनिया देखी, उसके बनाने वाले का ख्याल आया । अब मेरी उमर 89 वर्ष की है । मैं मालिक की तलाश में हूँ । मालिक या ईश्वर एक नियम है, एक कानून है और वह कानून है वासना का । यह संसार का रूप है ।

मैंने 11 नवम्बर 1975 को पैंतालीस मिनट तक आपका भाषण सुना । उस भाषण को सुनकर विचार आया कि जिस ताकत ने यह भाषण दिलाया, वह सच्चा प्रेम रखने वाला, भारतवर्ष का हितैषी तथा हमदर्द है । इसलिये मैं उस भाषण देने वाली रूह को भारतमाता कह कर नमस्कार करता हूँ ।

इस कुदरत के कानून को मैंने किसी हद तक समझा है । उस कानून को लोगों को समझाने के विचार से मैं इस वृद्ध अवस्था में भी काम कर रहा हूँ, क्योंकि मेरे ज़िम्मे मेरे परम पूज्य सद्गुरु महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज ने जगत्-कल्याण का काम दिया था । उस धर्म को निभाने के लिए मैंने मानवमात्र के कल्याण के लिए "मनुष्य बनो"

की आवाज़ उठाई और मानवता मन्दिर की होशियारपुर में स्थापना की।

जिस तरह मौजूदा विज्ञान, अच्छी नसलों की फसलें, अच्छी नसलों के जानवर आदि के बनाने की कोशिश कर रहा है, ठीक इसी तरह जब तक मानव जाति अच्छे इन्सान पैदा नहीं करेगी, देश का भला हो ही नहीं सकता। मेरी समझ में यह आता है कि इस वक्त संसार में खुदरो दरख्तों की तरह खुदरो इन्सान पैदा हो रहे हैं। तुख्म की तासीर और सोहबत का असर कभी जाता नहीं। मैं यह कहना चाहूंगा कि जब तक स्त्रियों तथा पुरुषों को यह ख्याल नहीं दिया जाता कि कैसी औलाद पैदा की जाय, देश सुधर ही नहीं सकता।

राष्ट्र को बनाने वाली केवल सरकार ही नहीं,बल्कि माताएँ भी हैं। अतः यह चन्द अलफाज़ उस वजूद को भेंट करता हूँ, जिससे वह भाषण निकला है। अगर हो सके तो जहाँ और इतनी हमदर्दी और दया आदि भारतमाता में है, अगर वह इस तरफ ध्यान दें, तो मेरी समझ में देश का बहुत कल्याण हो सकता है। इतिहास और हमारी पुरानी संस्कृति तथा सभ्यता मेरी बात को सच्चा साबित करेगी। और ज्यादा कुछ भारतमाता के चरणों में लिखता, लेकिन उनको अनेक काम हैं। शायद ध्यान न दें।

आपका फकीर

स्वर्गीय जय प्रकाश नारागण के नाम एक पत्र

पूज्य श्री जय प्रकाश नारायण जी महाराज :

प्रणाम !

दुनिया भी यह समझती है और मैं भी यह समझता हूँ कि आप मानव जाति तथा भारतवर्ष के सच्चे हितैषी हैं।

जो विचार आप सरकार एवं जनता को देना चाहते हैं क्या शासकगण व जनता उनको स्वीकार करेंगे ?

जिसको भी जो कुछ भी मिलता है, मिल गया है या मिलना है, वह या तो प्रारब्ध कर्म अथवा वर्तमान जीवन के कर्म का फल है और कर्म की जड़ वासना में है। 'जैसी आसा, वैसी वासा।' आप बीमार हैं, मैं भी बीमार होता हूँ। बड़े-२ सन्त और महात्मा भी बीमार होते हैं। ऐसा क्यों होता है ? आपको यह मानना ही पड़ेगा कि यह मनुष्य के कर्मों के फल का भुगतान है। अगर आप कर्मों के फल को नहीं मानते, तो आपको यह तो मानना पड़ेगा कि जिसने यह दुनिया बनाई है यह उसका ही खेल है और ऐसी दशा में बेचारा मानव करे भी क्या ? मानव की भलाई इसमें है कि वह अपने विचार और कर्म को ठीक रखे और जो कर्म उसने किये हैं, उसे भोगने में हाय-२ नहीं करे। यदि व्यक्ति कर्मों के फल में विश्वास नहीं भी रखता, तो इस विचार से शान्ति प्राप्त करे कि जो कुछ हो रहा है उसकी ही इच्छा है। हमारे देश में घृणा, क्रोध तथा गैरियत की पहिले भी कमी न थी, परन्तु जब से वर्तमान चुनाव-पद्धति आई, प्रजातन्त्र आया, ये दोष और भी बढ़े और इसका परिणाम भी सबको भोगना पड़ेगा। न्यूटन का सिद्धान्त

बताता है कि यदि हमारा हाथ हिलता है, तो उसकी लहर आकाश व तारामण्डल तक जाती है और वहाँ से वह लहर वहाँ वापिस लौट आती है, जहाँ से वह चली थी।

हमारे विचार सूक्ष्मशक्ति हैं, जो आकाश तक तरंगें भेजते हैं और समय आने पर अपना प्रभाव डालते हैं। यह दुनिया तो कुत्ते की दुम की भाँति है। बारह वर्ष तक नाल में रखो और फिर जब उसको निकालो तो टेढ़ी की टेढ़ी। सभी सरकारें भ्रष्टाचार (Corruption) के विरुद्ध संघर्ष करती हैं। क्या आप समझते हैं कि शासन करने वाले भ्रष्टाचार को दूर करने में सफल होंगे? नहीं यह सम्भव नहीं है। हाँ बलप्रयोग और कठोरता से कुछ सफलता मिल भी जाय। किन्तु वर्तमान समय में भारतीयों के जैसे विचार हैं, उनको देखते हुए भ्रष्टाचार का दूर होना सम्भव नहीं दीखता। कल ही मैंने आपका लेख पढ़ा कि आप स्वयं जनता पार्टी के कामों पर दुःख प्रकट करते हैं तथा प्रसन्न नहीं हैं। मेरे मन में आया कि आपको कुछ कहूं।

आपकी पिछली उमर है, आप इन झमेलों में नहीं पड़ें और अपना आगामी जन्म सुधारें। दुनिया जब से बनी है, इसमें तो उतार-चढ़ाव आते ही रहते हैं। हाँ यदि आप भारत का कुछ भला चाहते हैं, तो दो दलों या दो पार्टियों का शासन बन्द करवाएँ। जनता जिसको अच्छा समझती है बगैर किसी दबाव के उसे ही चुनें। जो आदमी चुने जायें, उनका नाम कांग्रेस, जनता या चाहे किसी भी पार्टी से जुड़ा हुआ हो, उन्हें प्रत्येक व्यक्ति से कानून बनाते समय सलाह लेनी चाहिए। अधिक से अधिक व्यक्तियों की सलाह प्रजातन्त्र को आगे बढ़ा सकती है। यदि लोगों की सलाह नहीं ली जाय तो दुनिया की कोई भी पार्टी देश में शान्ति तथा समृद्धि नहीं ला सकती।

आधुनिक प्रजातन्त्र के चुनाव की पद्धति मीठा जहर है। मेरे प्यारे श्री प्रकाश जी ! मैं आपकी इज्जत करता हूँ। मेरे सिर पर गुरु का ऋण है। उसे उतारसे के लिए मैं यह पत्र लिख रहा हूँ। प्रत्येक व्यक्ति के विचार, वाणी द्वारा बोले जाने पर ब्रह्माण्ड में उपस्थित रहते हैं और जब जहाँ उनकी आवश्यकता होती है वे अपना प्रभाव भी डालते हैं। मैं और क्या लिखूँ। वेदमार्ग में शिवसंकल्पमस्तु के अनुसार, अपने व्यक्तिगत स्वार्थ या प्रतिष्ठा के लिए किसी अन्य व्यक्ति का मन न दुःखाओ। यही वेदमार्ग है, यही सच्चा धर्म है। हे प्रिय जय प्रकाश नारायण ! मैं यह दावा नहीं करता कि मैं जो कुछ कहता हूँ, वह ठीक ही है। हो सकता है कि मैं ग़लत हूँ। किन्तु बड़े-२ ऋषि, मुनि तथा महात्माओं की शिक्षा है मन, कर्म तथा वचन से शुद्ध कर्म करो। मैंने 15 अगस्त 1947 में "मनुष्य बनो" की आवाज़ उठाई थी और तब से अब तक 36 वर्ष से इस दिशा में काम करता चला आया हूँ।

मेरे गुरुदेव दाता दताल महर्षि जी महाराज ने मुझे आज्ञा दी थी कि शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन कर जाना। यदि कोई व्यक्ति इस आवागमन के चक्र से छूटना चाहता है तो वह पारब्रह्म या शब्दब्रह्म या प्रकाश और उद्गीथ राग को पकड़े। यदि कोई इस संसार में सुखी रहना चाहता है, तो वह अपने संकल्पों को शुभ तथा कल्याणकारी बनाये। यह मेरा व्यक्तिगत अनुभव है। इस समय मैंने आपको भारतवर्ष की सबसे बड़ी हस्ती, सबसे ऊँची हस्ती मानकर, अपने विचार आपके सामने रखे हैं।

आपका फकीर

श्री राम स्वरूप के नाम एक पत्र :

सूफी साहिब :

राधास्वामी !

आपका पत्र मिला। मालिक की मौज मुझे सन्तमत में लाई। सन्त कहते हैं कि सूफी और वेदान्त दोनों ही कालमत में हैं। कालमत है मन का मत, जितना भी जीवन का खेल है, जो कि मन से होता है, वह कालमत है। आपकी कविताएँ और बातें, मेरा सारा काम, किताबें लिखना और सत्संग कराना, ये सब कालमत में हैं। काल-मत को समझकर, उसमें न फँसना ही सन्तमत है। किसी गुरु के जाल में फँस जाना, उसके प्रेम में मस्त हो जाना भी कालमत और मायामत है। क्योंकि जब तक कोई भी आदमी किसी गैर की इबादत करता है, ईश्वर परमेश्वर या गुरु को गैर समझकर पूजता है, वह काल और मायामत में है। तुम्हारी कविताओं को पढ़कर मैं जान गया हूँ कि तुम अभी काल और माया में हो। मैंने तुम्हें हकीकत का राज़ बताने के लिए ही चण्डीगढ़ बुलाया है, ताकि तुमको असलियत बता सकूँ। जब तक जीवन है, चाहे कोई भी हो, वह इस काल और माया के देश में है। "मैं और तू" के बिना गुज़ारा नहीं। "मैं और तू" भले ही रहे, परन्तु उसमें फँसो नहीं।

आपका फकीर

मानवता मन्दिर,
होशियारपुर।
3 दिसम्बर 1974

प्रिय मनमोहन :

राधास्वामी !

तुम्हारी चिट्ठी आई, पढ़ी। लगन अगर सच्ची है, तो मंज़िले मकसूद अवश्य मिल जाता है। संसार में हरएक जीव किसी न किसी विशेष काम के लिए आता है। कुदरत ने जिससे जो काम कराना होता है, वह करा ही लेती है।

मालिक या सद्गुरु हर समय व्यक्ति के साथ रहता है, जीव को इसका पता नहीं,इसलिये वह भटकता ही रहता है। काम करो—काम, पैसे कमाने के लिए भी और परमार्थ के लिए भी। 'मानव मन्दिर' पत्रिका आपके मानवता मन्दिर (बिलारी) के लिए हमेशा आती रहेगी।

सत्संगियों की यदि कोई भेंट या पैसा आये, तो उसे केवल मन्दिर के लिए ही प्रयोग किया जाय। उसका हिसाब-किताब बाकायदा रखा करो। मैं बूढ़ा हो गया हूँ। शिवरात्रि पर अलीगढ़ आऊंगा, वहाँ से बिलारी आने की कोशिश करूंगा। सबको राधास्वामी !

आपका
फकीर

मानवता मन्दिर
होशियारपुर।
7-9-79

प्यारे विश्वामित्र :

राधास्वामी !

आपके सवालों का जवाब :-

1) गुरु के चरण हमारे अन्दर प्रकाश हैं। यही सनातन धर्म कहता है, इसलिये उसमें सावित्री के दर्शन करने को कहा जाता है।

बाहर के गुरु का यह फरज़ है कि वह मुतलाशी को, उसकी प्रकृति के मुताबिक सलाह देकर, बहिर्मुखी से अन्तर्मुखी कर दे। बाकी जो भी गुरु-चेले का व्यवहार है, वह रस्मी है, हम रस्मों से आगे नहीं जा सकते।

गुरु के चरण प्रकाश तो हैं, परन्तु यह प्रकाश है क्या ? ऐ भोले-भाले इन्सान ! प्रकाश तेरी अपनी ही आत्मा का नूर है। अपनी आत्मा पर विश्वास रखना ही दरअसल गुरु-चरण का विश्वास है। मैं तुम लोगों को अज्ञान में रखकर ग़लत तरीके से अपनी पूजा नहीं करवाना चाहता।

(2) हरएक इन्सान, चाहे कोई भी हो इस संसार में किसी मकसद के लिए ही आता है और यह मकसद दरअसल में, उसके अपने कर्म काटने का है या कुदरत की मौज है। हम सब इस संसार में किसी कानून या असूल के मुताबिक काम करने के लिए मजबूर हैं। कुदरत के खेल की पूरी समझ इस संसार में किसीको भी नहीं आई। जितना-२ जिसकी बुद्धि ने काम किया, उतना-२ वह कह गया, जिससे अनेक मज़हब व मत बन गये।

उम्मीद है मैं 1980 में वैसाखी के बाद कैनेडा, यू. के. और यू. एस. ए. जाऊंगा। मिलना ज़रूर, क्योंकि संगत का असर ज़रूर पड़ता है। फ़िलहाल तुम एक विश्वास रखो। अगर विश्वास मुझ पर ही रखते हो तो यह मत समझो कि मैं होशियारपुर में ही रहता हूँ। गुरु तो हर जगह, हर समय शिष्य के साथ रहता है, परन्तु शिष्य बेचारा जानता नहीं। वह अज्ञानी है।

(3) मालिक का कोई रूप नहीं, फिर भी सभी रूप उसके हैं। एक ही रूप पर पूर्ण विश्वास रखो और उसको पूर्ण मानो। जब मन एक जगह टिक जायेगा और दुनिया की ख्वाहिशात कम हो जायेंगी फिर तुम्हें मालूम होगा कि तुम हो कौन। ज़बानी तौर पर तो मैंने बहुतेरा लिखा है कि हम कौन हैं। हम माँ के पेट से आये हैं। माँ के पेट में बाप के वीर्य का एक कीड़ा गया। वह कीड़ा कैसे बना? जो खुराक बाप ने खाई, उससे खूब बना। खून का ओजस् बना और ओजस् से वीर्य बना। उस वीर्य से कीड़ा पैदा हुआ जैसा कि गन्दे पानी में कीड़े अपने आप पैदा हो जाते हैं। बाप का खून, जिससे कि कीड़ा बना, खुराक से ही बनता है। आपको यह तो मालूम ही है कि संसार में कोई भी चीज़ तब तक पैदा नहीं हो सकती, जब तक सूर्य या सितारों की किरणें उस पर न पड़ें। तो इससे क्या सिद्ध हुआ? यह सिद्ध हुआ कि हमारा अपना रूप प्रकाश है। इस प्रकाश को छोटे पैमाने पर आत्मा और बड़े पैमाने पर परमात्मा कहते हैं। इसलिये ही शास्त्रों में गायत्री मन्त्र और प्राणायाम मन्त्र का महत्त्व है और हमें अपने अन्तर में सूर्य को देखने की हिदायत है।

मैं तो यह कह सकता हूँ कि उस प्रकाश के परे भी कोई चीज़ है, जिसका अनुभव केवल वही व्यक्ति कर सकता

है जो प्रकाश और शब्द में रहता हुआ उस चीज़ की तलाश करता है, जो हमारे अन्तर में प्रकाश को देखती है।

यह कथनी का भेद है, नाहीं बुद्धि विचार।
कथनी तज करनी करे, तब पावे कुछ सार॥

(4) **जो कुछ आपका ख्याल है, वह ठीक है, मगर,**
"कुछ करनी, कुछ करम गति,कछुक पूरबले लेख।
देखो भाग्य कबीर का, लख से भया अलेख॥

(5) मेरी व्यक्तिगत राय यह है कि मालिक के एक रूप को अपने अन्दर बसा लो और बिलकुल सच्चे बनकर सुबह-शाम, हर समय उस रूप से प्रेम करो, अपने आपको उसके सुपुर्द करो सच्चाई को अनुभव द्वारा जान जाओगे।

आपका
फकीर

मानवता मन्दिर,
होशियारपुर।
20-12-80

प्यारे दयाल शर्मा व प्यारी भाग्य :
राधास्वामी !

तुम्हारा 25 डालर का चैक और तीसरा चैप्टर मिल गया। दूसरा चैप्टर जनवरी में छप जायेगा मानव मन्दिर में। पहिले चैप्टर को लोगों ने बहुत ही पसन्द किया है।

आप मुझे सेहत का ध्यान रखने को लिखते हैं, मैं कहता हूँ कि आप अपनी सेहत का ध्यान रखा करो। मेरी सेहत ठीक नहीं रहती। मैं चाहता हूँ कि आई० सी० शर्मा वैसाखी पर ज़रूर आयें।

आपका फकीर

मासिक सन्देश

परमसन्त सद्गुरु हज़ूर मानव दयाल
डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश,

परमप्रिय सत्संगियो :

राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई !

यह सन्देश केवल मासिक न होकर विशेष वैसाखी सन्देश है। इस वर्ष का वैसाखी पर्व परम दयाल जी महाराज के चोला छोड़ने के बाद दसवाँ उत्सव है। इस दशक में परम दयाल जी तथा दाता दयाल जी महाराज के मिशन में उलरोत्तर प्रगति हुई है। राधास्वामी मत एवं मानवता धर्म का निखार हुआ है। सत्संगियों की संख्या बहुत बढ़ गई है। सारे विश्व में मानवता की माँग बढ़ने के कारण अनेक देशों में मानवता धर्म के केन्द्र विकसित हो रहे हैं और भारत में पाँच नये केन्द्र स्थानीय सत्संगियों के उत्साह के कारण न ही केवल स्थापित हो गये हैं, वल्कि वहाँ पर भवन निर्माण ज़ोरों से चल रहा है। इन विकासशील केन्द्रों में से जयपुर का मानवता पब्लिक स्कूल तथा केन्द्र उल्लेखनीय है। वहाँ पर राजस्थान विश्वविद्यालय से करीब दो किलोमीटर दूर तीन हज़ार वर्ग गज़ स्थल पर बहुत सुन्दर और सुदृढ़ पत्थरों की इमारत बन गई है और दो वर्ष से मानवता पब्लिक स्कूल चल रहा है। अलवर, भीलवाड़ा, अजमेर और ब्यावर के सत्संगियों ने काफी धनराशि

अनुदान की है और निश्चय किया है कि शीघ्र ही स्थल पर फकीर सत्संग भवन और अतिथिगृह निर्मित हो जायेंगे। इसी प्रकार हैदराबाद के बड़े उत्साही सत्संगियों ने, श्री भगवान व्यास, श्री मदन लाल व्यास और उनके सारे परिवार, श्री रूप चन्द, श्री गोपाल नागोरी तथा अन्य महानुभावों के नेतृत्व में मानव दयाल नगर, शिवराम पल्ली हैदराबाद में मानवता मन्दिर के भवन-निर्माण का कार्य ज़ोरों से चल रहा है और विशाल स्थल पर पत्थरों की बड़ी ही सुन्दर चारदीवारी बन चुकी है। अहेरी महाराष्ट्र में मानवना मन्दिर के भवन-निर्माण में भी बहुत प्रगति हुई है और शीघ्र ही फकीर सत्संग भवन पर छत्त पड़ने वाली है।

जहाँ तक गाज़ियाबाद से सात कि० मी० और देहली से 23 कि० मी० की दूरी पर मानवधाम की योजना का सम्बन्ध है, भवन-निर्माण का कार्य फिर से शुरू हो गया है। यहाँ पर फकीर सत्संग भवन की पहिली मंज़िल की छत्त पड़ गई है। इस भवन के पूरा हो जाने पर कम से कम दस हज़ार लोगों के बैठने का स्थान होगा। 21 अप्रैल 1991 को इस भवन में विशाल सत्संग 3 बजे दोपहर को आयोजित होगा। अन्तर्राष्ट्रीय मानवता परिषद् के अधिकारियों ने और भूमि भी सत्संगियों को प्लाट देने के लिए खरीद ली है। इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए मेरे प्यारे सत्संगी जनरल सेक्रेटरी अन्तर्राष्ट्रीय मानवता परिषद् क्वार्टर नं: 2, टीचर्स कालोनी, मोदी नगर यू० पी० से सम्पर्क कर सकते हैं और मोदी नगर टेलीफोन नं: 2003 पर बातचीत कर सकते हैं। मोदी नगर का S.T.D. Code No 01232 है। इन विकासशील गतिविधियों के अलावा आध्यात्मिकता की दृष्टि से सच्ची मानवता और सच्चे राधास्वामी मत का प्रचार और प्रसार अधिक से अधिक

सत्संगियों को लाभान्वित कर रहा है। राधास्वामी योग और दृष्टिकोण की जो व्याख्या सत्संगों में, देश-विदेश में प्रस्तुत की जा रही है, वह किसी और स्थान पर उपलब्ध नहीं है। यह आपका मानवधाम बहुत ही जल्द विश्व केन्द्र बनने जा रहा है। हाँ इसके भवनों के निर्माण के लिए आपकी आर्थिक सहायता की बहुत आवश्यकता है।

हर वर्ष की वैसाखी हमें यह याद दिलाती है कि कलियुग में जीवों को जगाने के लिए और उनके अन्दर मौजूद अविनाशी साक्षीभाव को प्रकट करने के लिए जिस वैसाक्षी को (जगत् से परे 'साक्षी' को) प्रकट कराने के लिए वैदिक ऋषियों, अवतारों और कबीर साहिब से लेकर आज तक के सन्त अवतारों ने भरसक प्रयास किया है, उसीको मानवमात्र तक, सरल भाषा में व्यक्त करने के लिए ही परम दयाल जी महाराज ने मानवता मन्दिर से वैसाखी सन्त सम्मेलन के सिलसिले को जारी करके, मानवमात्र पर अत्यन्त दया की है।

साधारणतया "वैसाक्षी" शब्द का अर्थ एवं आकाश और शब्द से परे, वह साक्षी तत्त्व है, जो अपने आप में पूर्ण है कि जगत् है और जिसकी एक बूँदमात्र से आद्या शक्ति एवं शब्दमय आकाश से, ब्रह्मा, विष्णु, शिव प्रकट होकर सृष्टि स्थिति और प्रलय उत्पन्न करते हैं और जिसमें वह पुनः आद्या शक्ति समेत विलीन हो जाते हैं। वह सर्वाधार वैसाक्षी अलख, अगम और अनामी से परे वोही परात्पर ब्रह्म राधास्वामी दयाल है, जो अपने आप में गुप्त रहता हुआ अनामी कहलाता है और प्रकट होने पर नामरूप वाला हो जाता है।

इसी गूढ़ भेद को खोलते हुए परमतत्त्वाधार, राधास्वामी दयाल स्वामी जी महाराज ने इस प्रकार लिखा है :—

शब्द गुप्त तो रहा अनाम, शब्द प्रगट तो धारिया नाम।

यह पद्य बहुत ही सरल और सीधी भाषा में लिखा गया है। स्वामी जी महाराज ने अपने अनुभव से उसी सच्चाई को बयान किया है, जिसे ऋषियों ने हज़ारों वर्षों की खोज के बाद श्रवण, मनन और निदिध्यासन का रास्ता अपनाकर उपनिषदों के महावाक्यों में बतलाया है। जब शब्द गुप्त रहता है एवं परात्पर ब्रह्म अव्यय और अक्षर ब्रह्म की अवस्था में रहता है, तो उसकी वह अवस्था अनामी कहलाती है। जब वह विश्वातीत अक्षर ब्रह्म परमपुरुष के रूप में प्रकट होता है और उसके अन्दर सृष्टि, स्थिति और प्रलय एवं ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूपी शक्तियाँ गुप्त रहती हुई भी मौजूद रहती हैं, उसे आत्मक्षर एवं पुरुषोत्तम परमपुरुष आदि कहा गया है। जब यही पुरुषोत्तम, जिसे सन्त सत्पुरुष कहते हैं, विश्व रूप में प्रकट हो जाता है, पुरुष और प्रकृति बनकर स्वामी और राधा बनकर आदि शब्द और आदि सुरत में व्यक्त होकर कोटि-२ ब्रह्माण्ड में फैल जाता है, उसे ऋषि विश्वसृट् ब्रह्म कहते हैं और सन्तमत राधास्वामी कहता है। मैं आपको यही व्याख्या सरल से सरल भाषा में देना चाहता हूँ, ताकि आपके मन से यह शंका दूर हो जाये कि राधास्वामी मत और सनातन धर्म एक दूसरे से अलग हैं।

शब्द गुप्त का अर्थ अपने आप में पूर्ण अव्यक्त, नाम-रूप से परे अलख, अगम, अनामी, दयाल पुरुष एवं अक्षर ब्रह्म अव्यय ब्रह्म और परात्पर ब्रह्म से परे सर्वाधारतत्त्व है। जब यही अव्यक्त और गुप्त तत्त्व पुरुषोत्तम बनकर सृष्टि की रचना करता है और पुरुष तथा प्रकृति के रूप में प्रकट होता है, तो उसके यह दो पहलू नाम-रूप कहलाते हैं। वाचक वेदान्तियों ने इस नाम-रूप को मिथ्या कहकर

भूल की है और उन्होंने वेदों के सत्य का उल्लंघन किया है। ऋषियों ने वैदिक मन्त्रों की व्याख्या करते हुए ब्राह्मणग्रन्थों में लिखा है।

"नाम सपे सत्यम्"

अर्थात् नाम-रूप सत्य है। दूसरे शब्दों में, प्रकट राधा-स्वामी, पुरुष और प्रकृति, शिव और शक्ति, लक्ष्मी और नारायण, जगदाधार और जगत्, ब्रह्म और माया, सर्वाधार की वास्तविक अभिव्यक्ति हैं। तुलसी दास जी ने इसी सनातन सत्य को नीचे दिये गये शब्द में बहुत सुन्दर रूप से स्पष्ट किया है।

'नाम रूप दोऊ ईश उपाधि,
अलख अलीह अनन्त अनादि।'

अर्थात् नाम और रूप, स्वामी और राधा, ब्रह्म और माया, परमतत्त्व के अभिन्न अंग हैं। वे अदृश्य हैं मन से परे हैं, अनन्त हैं और अनादि हैं। इसलिये स्वामी जी महाराज ने कहा है :-

'राधा आदि सुरत का नाम,
स्वामी आदि शब्द पहचान।'

जब गुप्त शब्द से व्यक्त शब्द प्रकट हुआ अर्थात् स्वामी प्रकट हुए, तो उसमें से जो धारा निकली, उसने सृष्टि की रचना की और अनेक स्तरों में, सुरत और शब्द के अनेक नमूने बनाती हुई, व्यापक विश्वरूप बन गई। सृष्टि के यही स्तर भूर्, भुवः, स्वः, महः, जनः तपः सत्यं दर्जे कहलाते हैं, जो विश्व में व्यापक हैं और मनुष्य के अन्दर में भी मौजूद हैं। जब जीव स्वामी से अलग होकर धारा में बहते हुए इस जगत् में आये, उन्हें अनुभव हुआ कि वे अपूर्ण हैं एवं अधूरे हैं, क्योंकि अपने निजधाम से निकलकर वे अपने प्रीतम से अलग होकर, उसे ढूँढ़ने के लिए आये थे,

किन्तु उसे पूर्णरूप से, सृष्टि के दर्जों में अनुभूत न करते हुए, विरह से पीड़ित होकर धारा से राधा बनकर, पराप्रेम और पराभक्ति को अपनाकर अपने प्रीतम से एक होने के लिए इच्छुक हो गये। जीवों की इसी इच्छा को पूरा करने के लिए राधास्वामी परमतत्त्व ने हर युग में अवतार लेकर उन्हें चेताने की कोशिश की और हर युग की ज़रूरत के मुताबिक अनेक प्रकार के योगों द्वारा, जीवों में आन्तरिक प्रेम पैदा करके मालिक से मिलने की प्रेरणा दी। सभी युगों में अलग-२ विधियों के द्वारा राधा को स्वामी से मिलाने और एक हो जाने का विधान प्रतिपादित किया गया है। सतयुग में ध्यान समाधि पर ज़ोर दिया गया, त्रेता में यज्ञ और कर्मकाण्ड के रास्ते को पनपाया गया, द्वापर युग में पूजा एवं भक्ति की प्रथा को प्रोत्साहन दिया गया और कलियुग में नाम की भक्ति एवं पराभक्ति को सुरत-शब्द योग के द्वारा प्रकट करके सरल से सरल पराप्रेम की विधि को सन्त अवतारों द्वारा प्रकट किया गया। यह सुरत-शब्द योग ऐसा पराभक्ति योग है जिसमें हरएक व्यक्ति को चाहे वह बच्चा हो, प्रौढ़ हो, वृद्ध हो, स्त्री हो, पुरुष हो, शिक्षित हो या अशिक्षित हो, सहज में ही पूर्णता प्राप्त हो सकती है। क्योंकि राधास्वामी तत्त्व स्वयं पराप्रेम और परम दया का अनखुट भण्डार है और उसी परम दया और पराप्रेम का अंश मनुष्य में भी मौजूद है, इसलिये राधा को स्वामी में मिलाने के लिए, प्रेम के वश में सतगुरु की शरणागत होकर, उसकी परम दया को प्रेरित करके उसीकी कृपा से उसमें विलीन हो जाना है। इसी भेद को ही कलियुग में सन्त अवतारों ने शब्दभेद के नाम से खोला है। स्वामी जी महाराज ने इस सनातन सत्य को सरल रूप से प्रकट करते हुए कहा है :—

"शब्द गुप्त जहाँ धारिया राधास्वामी नाम।
बिना मेहर नहीं पावई जहाँ कोई विश्राम॥"

इस दोहे में आदिकाल से लेकर आज तक ऋषियों, अवतारों और सन्तों ने जितनी विधियाँ बताई हैं वे सब प्रकट हो जाती हैं और प्रेम योग एवं राधास्वामी योग को सहज विधि बन जाती हैं।

सृष्टि एवं प्रकृति, या माया परमतत्त्व का विस्तार है और ब्रह्म उस विस्तार या धार का अक्षर आधार है। जब यह आधार और विस्तार, ब्रह्म और माया एवं राधा और स्वामी अलग होकर जगत् में विचरते हैं, तो जीव सुख-दुःख, लाभ-हानि, जन्म-मरण आदि के द्वन्द्व का अनुभव करता है। ध्यान के द्वारा आत्म-ज्ञान होने से, सुख-दुःख आदि के अनुभव में समता मिलती है। इसी प्रकार यज्ञ और कर्मकाण्ड के द्वारा भी कर्मों का अशुभ योग समाप्त हो जाता है और शुभ योग के कारण दुःख का अनुभव सुख में परिवर्तित होता है। इसी प्रकार, पूजा एवं द्वैत की भक्ति में भी साधक आनन्द का अनुभव करता है। किन्तु जब तक ध्यान से परे, कर्म से परे और द्वैत की भक्ति से परे, जीव का परात्पर ब्रह्म में विलीनीकरण होकर चौथे पद में प्रवेश नहीं होता, तब तक परमानन्द एवं विश्राम का अनुभव नहीं होता। यह चौथे पद की प्राप्ति, न तो ध्यान से, न ही कर्म से और न ही साधारण भक्ति से मिलती है, बल्कि केवल सद्गुरु से पराभक्ति और पराप्रेम के द्वारा सहज में प्राप्त होती है। इसलिये केवल सद्गुरु की मेहर एवं परम दया से ही ध्याता ध्येय, ज्ञाता ज्ञेय, भक्त भगवान्, राधा और स्वामी का विलीनीकरण एवं विश्राम मिलता है।

जब अविनाशी साक्षी परमतत्त्व अथवा दयाल प्रकट होकर, राधा और स्वामी का रूप धारण कर लेता है और

जीव अगम की धारा में बहते हुए परमतत्त्व से दूर चले जाते हैं, तो वे केवल दयो के सिद्धान्त के द्वारा ही दयाल में विश्राम पा सकते हैं। वह दया ध्यान, कर्म और पूजा के द्वारा नहीं, बल्कि शरणागत होने के द्वारा ही प्राप्त होती है। सत्संगी परमतत्त्वाधार नामरूप से परे परमतत्त्व को को तब तक इष्ट नहीं बना सकता, जब तक कि वह उसके किसी एक रूप को इष्ट न बना ले। इसलिये सन्तमत में निजधाम को प्राप्त करने के लिए तीन सोपान स्बीकार किये गये हैं। 1) इष्ट अथवा सद्गुरु 2) सत्संग एवं सद्-गुरु से बाहरी प्रेम और 3) सतनाम, एवं सद्गुरु से आन्तरिक प्रेम इन्हीं तीन साधनों से सत्संगी चार दर्जों से निकलता है और आखिरी दर्जे पर उसे विश्राम या निजधाम मिल जाता है। इस दर्जे पर न तू होता है न मैं होती है, न राधा होती है न स्वामी होता है। राधा-राधा नहीं रहती, स्वामी-स्वामी नहीं रहता, केवल शुद्ध हस्ती रह जाती है और साधक राधास्वामी और पुरुष प्रकृति के खेल को, प्रकाश और शब्द को केवल साक्षी रहता हुआ, ऐसा ऊँचा अनुभव करता है जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती, किन्तु जिसे एक हालत कहा जाता है। यही पूर्णता की हालत है, यही राधास्वामी हालत है।

मैंने कई बार आपको सरल भाषा में बताया है कि साक्षी अवस्था में रहने का क्या अर्थ है। जब कोई यात्री अनेक नगरों की यात्रा करता हुआ दिल्ली या बम्बई जैसे नगरों से गुज़रता है तो उसे कई सुखद और दुःखद घटनाएँ देखने में आती हैं। कहीं पर जशन मनाये जा रहे हैं, शादियाँ हो रही हैं, नाच-गाने हो रहे हैं और कहीं पर मातम मनाये जा रहे हैं। लाश के पीछे चलने वाले मरे हुए व्यक्ति के सम्बन्धी और मित्र ज़ार-२ रो रहे हैं। कहीं पर मोटरों

और मोटर साईकलों की दुर्घटनाएँ हो रही हैं और दुर्घटना में ग्रस्त व्यक्ति खून से लथपथ घायल होकर, सड़कों पर गिरते हुए दिखाई दे रहे हैं और उनमें से कई कुचल कर लाशों के रूप में पड़े हुए हैं, किन्तु उस नगर से गुज़रने वाला मुसाफ़िर इन सब घटनाओं को साक्षी रूप में देखता चला जा रहा है। न वह हँसता है न वह रोता है, न वह सुखी होता है, न वह दुःखी होता है। जो सत्संगी संसार-रूपी नगर में, केवल साक्षी भाव से रहता है, वही चौथे पद का अनुभव कर रहा होता है। सद्गुरु को अपनाने के बाद सत्संगी सत्संग में प्रेम के तीन दर्जों से गुज़रता हुआ, चौथी निजधाम की अवस्था को पा जाता है। यही अवस्था ही सतनाम एवं राधास्वामी अवस्था कहलाती है।

शुरू-२ में जब सत्संगी संसार से दुःखी होकर, सच्चे सद्गुरु के सत्संग में हाज़िर होता है, तो दूर से बैठे हुए भी उस दर सद्गुरु की वाणी का असर पड़ता है और उसमें भक्ति की भावना, सेवाभाव के रूप में पैदा हो जाती है। वह सत्संग के इलाके में आ जाता है। इस अवस्था को या प्रेम को सालोक्य सम्बन्ध कहा जाता है। निर्मल गंगा के किनारे हरिद्वार में दूरी पर रहने वाले लोगों पर भी वहाँ का पानी पीने से अनजाने में निर्मलता का अनुभव हो रहा होता है। उस इलाके के रहने वाले लोग उस नगर को छोड़ना नहीं चाहते। चाहे वह गंगा में स्नान न भी करते हों, तब भी वह मानो अपने नगर के प्रेम में और भक्ति में आनन्द लेते हैं। उनका यह भाव सेवाभाव है। यही हालत उन सत्संगियों की होती है जो सत्संग में दूर बैठे हुए भी, सद्गुरु के प्रेम में बँध जाते हैं और उसकी सेवा भी करते हैं।

आगे चलकर जब सत्संगी सद्गुरु के प्रेम से प्रभावित होकर घर में और अपने काम पर भी सद्गुरु की छवि का

ध्यान करता रहता है और अन्तर में उसीका नाम लेता है तो उसकी सालोक्य भक्ति सामीप्य भक्ति में बदल जाती है। सामीप्य सम्बन्ध का मतलब निकटता, नज़दीकी या कुर्बत कही जाती है। जब हरिद्वार में रहने वाला नागरिक गंगा के किनारे पर आ जाता है, हरजी की पौड़ी पर कलकल करती हुई निर्मल गंगा की लहरों को देखता हुआ, उन लहरों से छूकर ठण्डी हवा के स्पर्श का अनुभव करता है, तो उसका यह अनुभव गंगा से प्रेम का सामीप्य सम्बन्ध कहा जाता है।

इस प्रकार जब रात-दिन सद्गुरु के प्रेम में ओत-प्रोत रहता हुआ सत्संगी, खाते-पीते, उठते-बैठते, सच्चे दिल से गुरु के नाम के सुमिरन में इतना मगन हो जाता है कि उसकी 'मैं' समाप्त हो जाती है और वह हर जगह अपने परम-प्रिय गुरु की झलक देखता है, तो उसका प्रेम का सम्बन्ध सारूप्य सम्बन्ध कहलाता है। इस सम्बन्ध में वह 'मैं' को भूलकर केवल गुरु का रूप बनते हुए जीवन्मुक्ति की हालत को पा जाता है। इस तीसरी अवस्था पर पहुँचा हुआ सत्संगी स्वामी राम तीर्थ के नीचे दिये गये शब्द को अनुभव स्वयं करता है :—

"जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।
कि हर शै में जलवा तेरा हूबहू है॥"

इस हालत में सत्संगी सारूप्य एवं गुरु के रूप को धारण करता हुआ, प्रेम के एकत्व का अनुभव करता है और उसका दो-पना समाप्त करता है। उस समय वह नीचे दिये गये शब्दों की सार्थकता को समझता है :—

"जब मैं था वह गुरु नहीं, जब गुरु हैं मैं नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, वामें दो न समाहिं॥

तू तू करता तू भया, मुझमें रही न हूँ ।
बलिहारी तेरे नाम की, जित देखूं उत तूँ ॥

मेरे आत्मरूप परमप्रिय सत्संगियो ! यही अवस्था उसी गंगा के तट पर हरजी की पौढ़ी पर खड़े हुए व्यक्ति की होती है, जब वह गंगा की निर्मलता से प्रभावित होकर कपड़े उतारकर हरजी की पौढ़ी पर जंजीर पकड़कर पावन गंगा की धारा में डुबकी लगाता है। ऐसा करने से वह जल से ओत-प्रोत होकर, जल का स्वरूप बन जाता है और एकत्व के अनुभव का आनन्द लेता है।

सत्संग की अमृतधारा में इस प्रकार बहते हुए अपनी 'मैं' को भुलाकर अन्त में सत्संगी 'तू' और 'मैं' के झगड़े से ऊपर उठ जाता है। इस राधास्वामी हालत में उसे कुछ करने-धरने की ज़रूरत नहीं रहती। वह देश-काल, पूजा-पाठ, जाप-समाधि एवं शब्द की अवस्था में भी केवल विशुद्ध हस्ती में रहने लगता है। इसी अवस्था को स्पष्ट करते हुए कबीर साहिब ने कहा है :—

माला फेरूँ न हर भजूँ, मुख से कहूँ न राम।
मेरा राम मुझको भजे, तब पाऊँ विश्राम ॥

यही उत्तम अवस्था प्रेम का सायुज्य अर्थात् लय का सम्बन्ध कहलाती है, जिसे मैंने शुरू में ब्राह्मी स्थिति कहा है। गंगा में स्नान करने वाले श्रद्धालु की यह अवस्था तब होती है जब वह निर्मल गंगाजल में डुबकी लगाकर बाहर ही न निकले और स्वयं जलमय हो जाये। ऐसी अवस्था में रहने वाला सद्गुरु, परमसन्त कहलाता है। ऐसे सद्गुरु की शरणागत हो जाने से सत्संगी अन्त में इस अन्तिम अवस्था को पा जाता है। यद्यपि इस अवस्था को भाषा में वर्णन नहीं किया जा सकता फिर भी साक्षी भाव में रहने वाला व्यक्ति उसको इस प्रकार भाषा में व्यक्त करता है :—

जेहि गति लखे नहीं गति लखे वह शुद्ध तत्त्व विचार है।
जो चरण शरण की ओट आया, भव से बेड़ा पार है॥

दाता दयाल जी महाराज ने इस पद्य में भेद खोल दिया है और बता दिया है कि साक्षी भाव का अनुभव, सच्चे गुरु की संगत में शरणागत हो जाने से होता है। इसी सच्चाई को अधिक स्पष्ट करते हुए हजूर दाता दयाल जी महाराज फ़रमाते हैं :—

कर गुरु की संगत रात दिन, नर जनम अपना सुधार ले।
दे फेंक माया बोझ सिर से, यम का शीश न भार ले॥
तू शीश दे तन मन को दे, गुरु भक्ति रतन अमोल ले।
राधास्वामी भेद बताया तुमको, हिये तराजू तोल ले॥

इस वैसाक्षी सन्देश में, दाता दयाल जी के ये दो शब्द जटिल से जटिल गुत्थी को सुलझा रहे हैं और ऊँची से ऊँची अवस्था को ऐसी सरल भाषा में स्पष्ट कर रहे हैं कि हरएक व्यक्ति इस सहज अवस्था को समझ सकता है और उसे अपना सकता है।

मैंने पहिले ही इस अवस्था की सरल व्याख्या कर दी है, जिसे दाता दयाल जी महाराज ने शुद्धतत्त्व विचार कहा है। इसमें कोई शक नहीं कि यह राधास्वामी हालत, साधक का मंज़िले मकसूद है। किन्तु इस पर पहुँचने के लिए आसान से आसान उपाय सच्चे गुरु की शरण में अपने आप को समर्पित कर देना है। आम आदमी कर्मों के भार के कारण, इस उच्चतम अवस्था पर नहीं पहुँच सकता, जब तक कि वह उस भार से मुक्त नहीं हो जाता। इस सूक्ष्म अवस्था को बुद्धि समझ नहीं सकती और न मन उस तक पहुँच सकता है। इसलिये पहिले शब्द में इस शुद्ध तत्त्व की बारीकी को ध्यान में रखते हुए दाता दयाल जी ने कहा है कि केवल वही व्यक्ति इस जटिल जगत् से निकल कर जाते-

पाक अवस्था को पा सकता है, जो गुरु के कमल-रूपी चरणों की शरण में आ जाता है।

सद्गुरु की बाहरी संगत से और लगातार उसके आन्तरिक सुमिरन, ध्यान और भजन से ही जन्म को सुधारा जा सकता हैं, एवं धार में बहने के स्थान पर, सुधार को अपनाया जा सकता है अर्थात् धारा से राधा बना जा सकता है। इसलिये दूसरे पद्य में दाता दयाल जी महाराज ने फ़रमाया है कि 24 घण्टे अपने आपको परमतत्त्वाधार के सुपुर्द करने से जीवन्मुक्ति की अवस्था मिल जाती है, जिससे मनुष्य के सभी पिछले कर्म कट जाते हैं और नये कर्म नहीं बनते हैं। यह रास्ता एक दृष्टि से बहुत सरल है और दूसरी दृष्टि से बहुत कठिन है। इसकी सरलता इस तथ्य में छुपी है कि एक बार शरणागत हो जाने से सहज अवस्था मिल जाती है और कुछ करना-धरना नहीं पड़ता। कठिनाई इस बात की है कि इस अनमोल पराभक्ति को पाने के लिए तन,मन,धन न्यौछावर कर देना पड़ता है और सभी दुनियावी इच्छाओं और वासनाओं को तिलांजलि दे देनी पड़ती है। यह मुश्किल भी तब आसान हो जाती है. जब साधक अपने इष्ट को इतना प्यार करता है कि उसे शरीर की, मन की और आत्मा की सुध नहीं रहती और न उसे शारीरिक स्वास्थ्य की, मानसिक सुख की और आत्मिक आनन्द की चाह रह जाती है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वह इन अनुभवों से वंचित रहता है। उसका शरीर निश्चित रूप से स्वस्थ होगा, उसका मन परमसुख का अनुभव करेगा और उसकी आत्मा परमानन्द को प्राप्त करके परम शान्ति का अनुभव करेगी।

ऐ मेरे प्यारे अंशो ! मेरे अपने अनुभव में इस उच्चतम अवस्था की प्राप्ति धीरे-२, किन्तु सच्ची लग़न से प्राप्त हो

सकती है और होती है। बचपन में मुझे शुद्ध भक्ति के अनेक अनुभव हुए। न मालूम पूर्वजन्मों के संस्कारों के कारण या हमारे परिवार के भक्तिपूर्ण संस्कारों के कारण, पाँच वर्ष की आयु से ही घण्टों समाधि में बैठकर इष्ट पर ध्यान लगाने में आनन्द मिलता था। मैंने भगवान् शंकर को इष्ट बनाकर बहुत आनन्दमय अनुभव किये। कई बार सूक्ष्म शरीर से भगवान् शंकर के साथ लोक-लोकान्तरों में जाने का अनुभव भी हुआ। इसके साथ ही साथ मैं शैशवावस्था से ही भगवान् शंकर और भगवान् कृष्ण को अलग नहीं मानता था। इसलिये मैंने अपने जीवन को भगवद्गीता के अनुसार ढाला। इसका परिणाम यह हुआ कि 1957, 1958 और 1959 में मुझे हर रविवार को जोधपुर शहर से दूर एक एकान्त स्थान पर स्थित महान् कालेश्वर के मन्दिर में प्रकाश का गहरा अनुभव होता था। मैंने गीता को केवल बौद्धिक दृष्टि से ही नहीं पढ़ा, बल्कि जीवन्मुक्ति की स्थिति का भी अनुभव किया। उन दिनों 'ॐ नमः शिवाय' के स्थान पर सोहम् का अजपाजाप सहज में चलता था। किन्तु उस समय मुझे सन्तमत या राधास्वामी मत एवं गुरुमत का पूरा ज्ञान नहीं था। इसलिये मैं कभी महसूस नहीं करता था कि पूर्णता प्राप्त करने के लिए, किसी मनुष्य को गुरु मानने की आवश्यकता है। इसलिये मैं अधिकतर आनन्द की अवस्था में ही रहता था, किन्तु परमानन्द का अनुभव नहीं हुआ था। उस समय मैं यही सोचता था कि रिटायर होने के बाद कहीं गंगा के किनारे पर कुटिया बनाकर रहा जाये, ताकि शरीर छोड़ने से पहिले ब्राह्मी अवस्था एवं परमानन्द की अवस्था प्राप्त हो जाये। जब 1959 में परम दयाल जी महाराज के स्वप्न में दर्शन होने के चार साल बाद 'हिन्दु महासभा भवन' में साक्षात् दर्शन हुए, तो एक क्षण में मेरा

दृष्टिकोण बक्ल गया। मेरे शरीर के कण-२ में परिवर्तन हुआ और मैंने अचाउक यह अनुभव किया कि परम दयाल जी महाराज जैसे सद्गुरु के शरणागत होने से परमानन्द की प्राप्ति हो सकती है। ज्यों ही परम दयाल जी महाराज ने मेरे सिर पर अपना हाथ रखा, मेरे शरीर में एक बिजली सी दौड़ गई और मेरे संस्कार पराभक्तिमय हो गये। 19 वर्ष तक परम दयाल जी के सान्निध्य में मेरा उनके प्रति इष्ट के रूप में अगाध प्रेम रहा। इसलिये उनके चोला छोड़ने के बाद भी मेरे शरीर के कण-२ में फकीर ही फकीर समाये हुए हैं। इन पिछले 10 वर्षों में अपने अनुभव को बाँटने की, परम दयाल जी महाराज की आज्ञा का पालन करते हुए मुझे जो अवस्था प्राप्त हुई है, उसका बयान तो नहीं किया जा सकता, किन्तु उसी के आधार पर मैं सत्संगियों को सत्संग देता हूँ और लेखों द्वारा उनमें उनके साक्षी भाव को उभारने की कोशिश करता हूँ।

मेरे परमप्रिय आत्मांश सत्संगियो! मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपके जिस प्रेम ने मुझे आन्तरिक शान्ति की ओर अग्रसर किया है और जिसके कारण मैं आपको अपना इष्ट मानता हूँ, वही प्रेम आपको संसार के इस जटिल मायाजाल से निकालकर सुख-दुःख के अनुभवों को पार कराते हुए अवश्य मंज़िले मकसूद पर पहुँचा देगा। यहाँ पर मैं केवल इतना बता देना चाहता हूँ कि इस मार्ग में प्रेम के सिवाय और कुछ नहीं, सर्वाधार अलख, अगम, अनामी से परे दयाल पुरुष प्रेम है। यह सारा जगत् उसीके प्रेम की अभिव्यक्ति है। यहाँ पर परस्पर बिरोधी तत्त्व एक-दूसरे के आकर्षण और विकर्षण से जगत् की स्थिति को बनाये रखते हैं। ईर्ष्या और द्वेष भी प्रेम के अंग हैं। अन्तर केवल इतना है कि ईर्ष्यालु अपने प्रेम में या अपने प्रेम के विषय

में इतना ज़्यादा आसक्त होता है कि वह किसी दूसरे को सहन नहीं करता। इस जगत् में यदि परस्पर टकराव नहीं होता, तो परमतत्त्व समता लाने के लिए अवतार न लेते। दाता दयाल जी महाराज ने इसी सत्य को बताते हुए कहा है :—

मैं हुआ जब पतित तो तब तू पतित पावन बना।
डूबा भव सागर में, मैं तब तू तरन तारन बना॥
यदि न होता जग में रावण कैसे आते राम चन्द्र।
कंस ने पैदा किया मथुरा में कृष्ण आनन्द कन्द॥

इस जगत् में कोई भी वाक्य नकारात्मक नहीं होता, बल्कि स्वीकारात्मक होता है। जब हम किसी चीज़ को स्वीकार नहीं करते तो हम अन्तस् से किसी और चीज़ को स्वीकार कर रहे होते हैं। जो व्यक्ति यह कहता है कि ईश्वर इस जग को पैदा करने वाला नहीं है, वह वास्तव में किसी और तत्त्व को या प्रकृति को सृष्टि करने वाला मान रहा होता है। जब हम किसी चीज़ का विरोध कर रहे होते हैं तो हम अपने आपको विरोधी मानकर अपने व्यक्तित्व की पुष्टि कर रहे होते हैं। यही कारण है कि परमसन्त न तो किसीका विरोध करता है न किसी चीज़ की पुष्टि करता है :—

कबीरा खड़ा बाज़ार में सबकी माँगें खैर।
न काहू से दोस्ती न काहू से वैर॥

इसका मतलब यह नहीं कि सन्त किसीसे प्रेम नहीं करता, प्रेम तो सब प्रकार के विरोध को मिटाकर एकता का अनुभव कराता है। राधास्वामी मत की यही खूबी है कि वह हर प्रकार के भेदभाव को समाप्त कर देता है। उसे पूर्ण विश्वास होता है कि सुख-दुःख, लाभ-हानि, गर्मी-सर्दी, नेकी-बदी, जन्म-मृत्यु सभी द्वन्द्व केवल इन सबके पीछे

एकत्व पर आधारित है। जो साधक उस एकीभाव का अनुभव कर लेता है, उसके लिए सभी भेद समाप्त हो जाते हैं। इसी सच्चाई का बयान करते हुए कहा गया है :—

राधास्वामी सतगुरु आये भेद दिया पूरा-२।

इस पद्य का मतलब यह है कि संसार में भेद अवश्य है, अच्छे-बुरे लोग भी हैं किन्तु जब साधक इन द्वन्द्वों से ऊपर उठकर इनके पीछे मालिक की झलक देखता है, तो उसका भेदभाव एवं विरोधी भाव समाप्त हो जाता है। इसलिए ऊपर दिये गये शब्द में भेद मिटाने की बात नहीं है, बल्कि भेदभाव को मन से निकाल देने का आदेश है। यह भाव तभी समाप्त हो सकता है जब हमारा सद्गुरु का प्यार अगाध, अनन्त और दृढ़ हो जाता है। दूसरे शब्दों में, भेदभाव उस समय कोई अर्थ नहीं रखता, जब हम मालिक की व्यापकता का अनुभव करते हैं और हर अवस्था में अपने प्रीतम को स्मरण करते हैं। सच्चा प्रेमी सिवाय प्रीतम के और कुछ नहीं देखता। वास्तव में, जगत् में सिवाय हमारे प्रीतम के और कुछ नहीं है। हमारा यह भ्रम है कि एक व्यक्ति हमारा शत्रु है और दूसरा मित्र है। हम खुद ही अपने संस्कारों को ढालकर किसीको मित्र किसीको शत्रु समझ लेते हैं। इसलिये भगवान् कृष्ण ने भगवद्गीता में कहा है।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुः।
आत्मैव रिपुरात्मनः॥

हम स्वयं ही अपने मित्र हैं और स्वयं ही अपने शत्रु हैं। यहाँ पर आत्मा का अर्थ हमारी अपनी मनोन्नति है। हमें भेदभाव तभी सताता है, जब हमारी मनोवृत्तियाँ बिखरी हुई होती हैं। जब हमारा मन प्रीतम के प्रेम में टिक जाता है अर्थात् जब हमारी दृष्टि प्रेममय हो जाती है, तो मित्र और शत्रु का भाव स्वतः ही समाप्त हो जाता है। इसके

अलावा मन की शुद्धता के कारण उसकी गुप्त शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं और चमत्कारी अनुभव होने लगते हैं। इन अनुभवों से विश्वास बढ़ता है, किन्तु केवल चमत्कारों का विश्वास साधक को भ्रम में भी डाल सकता है। वह इन अनुभवों के आधार पर सम्भवतया सद्गुरु को शारीरिक और मानसिक रूपमात्र ही समझकर यह भूल सकता है कि सद्गुरु का असली स्वरूप शरीर, मन और आत्मा से परे अविनाशी साक्षी रूप है। इसलिये एक सच्चा गुरु सत्संगी के इस विश्वास को अन्धविश्वास से बदल कर सुदृढ़ ज्ञान की भक्ति में लगा देता है, ताकि वह सद्गुरु को केवल शरीर मानकर चोला छोड़ते समय स्थूल रूप में न जुड़ जाये। जो गुरु अपने शिष्य को यह सच्चा ज्ञान नहीं देते, उनके शिष्य भले ही लाखों रुपये डेरे आदि के लिए दे दें, उनका उद्धार नहीं हो सकता। इसी भुलावे में वह समझते हैं कि उनके गुरु का शारीरिक रूप उन्हें सत्तलोक ले जायेगा, किन्तु सत्य तो यह है कि उनकी यह शारीरिक आसक्ति उन्हें आवागमन के चक्र में फँसाती है। परम दयाल जी महाराज ने सत्संगियों को उनके अन्धविश्वास से निकाल कर ऊँची दृस्टि देने की कोशिश की।

इसी ऊँची दृष्टि को पनपाने के लिए उन्होंने मुझे यह काम दिया कि मैं भोलेभाले सत्संगियों को उनका विश्वास तोड़े बिना और उनके लोक और परलोक दोनों को सुधारने के लिए गुरुमत की पराभक्ति का ज्ञान दूँ। पिछले दस वर्षों में मैंने यह अनुभव किया है कि सैकड़ों सत्संगी जो सन्तमत के सच्चे अनुयायी हैं और जो मेरे में परम दयाल जी महाराज का रूप देखते हैं, बार-२ मुझे लिखते हैं कि मेरे रूप ने उन्हें कई मुसीबतों से बचाया, बीमारियों से मुक्त किया, उनकी सुरत को चढ़ाया, उन्हें व्यापार में परामर्श

देकर लाखों का लाभ प्रदान किया, उनके मरे हुए बच्चे को जीवित कर दिया और दफ्तरों में प्रकट होकर उनके काम बनाये आदि-२। जब मैं उन्हें बताता हूँ कि जिस रूप ने उनकी मदद की है, वह मेरा सूक्ष्म रूप है, एवं मानसिक रूप है और मैं शरीर, मन और आत्मा से परे होने के कारण अक्सर साक्षी भाव में रहता हूँ, तो उनकी भक्ति और भी दृढ़ हो जाती है।

मैंने यह उदाहरण इसलिये दिये हैं, ताकि मेरे प्यारे सत्संगियो आप इस भेद को समझो और भ्रम में न पड़ो। जब तक सत्संग में बैठकर सद्गुरु से निकटतम सम्पर्क करके अपने शकों और सन्देहों को दूर नहीं किया जाता, तब तक साक्षी भाव की अवस्था नहीं आ सकती। सद्गुरु के केवल दर्शनमात्र से आपको आन्तरिक लाभ नहीं हो सकता। हाँ अगर आप केवल दुनियावी इच्छाओं की पूर्ति के लिए ही सत्संग में आते हैं और सद्गुरु से अगाध प्यार करते हैं और उसके रूप के ध्यान का अभ्यास करते हैं, तो आपकी दुनियावी इच्छाएँ तो पूरी होती ही रहेंगी, किन्तु परम शान्ति केवल तब मिलेगी, जब गुरु की देख-रेख में अपना जीवन यापन करेंगे। परम दयाल जी कहा करते थे कि **विरला ही उनके पास आवागमन के चक्र से मुक्त होने के लिए आता है। आम लोग सन्तमत के अधिकारी नहीं हैं।** जब से मैंने उनकी आज्ञा का पालन करते हुए, उन सत्संगियों को बताया है कि उनके चमत्कारी अनुभव रास्ते के दर्जे हैं और मंज़िल नहीं हैं, बहुत से सत्संगी इस उद्देश्य से मेरे पास आते हैं कि वे पराभक्ति की आखिरी सीढ़ी पर पहुँच जायें। इससे उनका लोक भी बनता रहेगा और परलोक भी बन जायेगा। वह पराभक्ति के गूढ़ रहस्य को समझने लगे हैं।

ओह मेरे प्यारो ! यहाँ पर मैं केवल एक उदाहरण देकर आपको गूढ़ सत्य को सरल भाषा में बताने की कोशिश करूंगा। मान लीजिये आप बम्बई से देहली रेलगाड़ी में सफर कर रहे हैं, रास्ते में इन्दौर, भोपाल, झांसी आदि स्टेशन आते हैं, किन्तु आप रेलगाड़ी से इन स्टेशनों पर इसलिये नहीं उतरते क्योंकि वह आपका मंज़िले मकसूद नहीं है। हाँ ! थोड़ी देर के लिए आप किसी बड़े स्टेशन पर उतर कर जलपान कर सकते हैं, किन्तु इंजन की सीटी बजते ही आप तुरन्त अपने डिब्बे में पहुँच जाते हैं। यह सीटी गुरु की चेतावनी है कि आप कहीं पीछे न रह जायें। मान लीजिये आपकी रेलगाड़ी आगरा में दो घण्टे के लिए रुकती है, आप इतनी देर में टैक्सी करके ताजमहल देखने के लिए जाना चाहते हैं,आप स्टेशन मास्टर से उस रेलगाड़ी का देहली के लिए रवाना होने का समय पूछते है। वह सच्चा स्टेशन मास्टर कहेगा, "हाँ साहिब ! आप डेढ़ घण्टे में ही ताजमहल देखकर टैक्सी द्वारा वापिस लौट सकते हैं, किन्तु आप कहीं ताजमहल की सुन्दरता से प्रभावित होकर अधिक समय नहीं लगायें, नहीं तो आप यहीं रह जायेंगे।" आप ताजमहल देखने के लिए जाते हैं, किन्तु स्टेशन मास्टर के परामर्श को भूल जाते हैं, परिणाम यह होता है कि आप ढ़ाई घण्टे के बाद स्टेशन पर पहुँचते हैं, जिसके फलस्बरूप आप देहली नहीं पहुँच सकते। सद्गुरु स्टेशन मास्टर है, जो आपको सच्चा ज्ञान और सच्ची राय देता है। यदि स्टेशन मास्टर सच्ची राय नहीं देता है और किसी लालच में आपको झूठा आश्वासन देता है कि वह गाड़ी को लेट कर देगा, आप स्वयं ही पहिचान लो कि उसका अन्त क्या होगा ? झूठ बोलते वाला स्टेशन मास्टर भी अपने अन्तःकरण में ग्लानि को महसूस करेगा। परम दयाल जी महाराज

सच्चे स्टेशन मास्टर थे, इसलिये उन्होंने अपने अन्त:करण को शुद्ध रखा और मुसाफिरों को भी सच्चा ज्ञान दिया।

ओह मेरे प्यारो ! मैं भी आप जैसे मुसाफिरों में से एक मुसाफिर था, किन्तु परम दयाल जी स्टेशन मास्टर ने मुझे यह काम दिया, ताकि मैं सच्चाई पर चलकर, अपने अन्त:करण को शुद्ध रखता हुआ, खुद भी मंज़िले मक़सूद पर पहुँच जाऊँ और दूसरों को भी अपना अनुभव बाँटकर उसी मंज़िल पर ले जाऊँ। मैं आयुपर्यन्त एक सच्चा अध्यापक रहा हूँ और मैंने यह अनुभव किया है कि छात्रों को यदि सच्चे प्रेम से पढ़ाया जाये तो वे सबके सब पास हो जाते हैं। जहाँ सच्चा प्रेम है, वहाँ छलकपट नहीं हो सकता। मेरी आत्मा के स्वरूप सद्गुरुरूप सत्संगी भाई और बहनो ! मैं सच्चे दिल से चाहता हूँ कि वैसाखी का यह सन्देश आपको प्रेरणा दे, आपकी भक्ति सफल रहे और आपके शरीर, मन, आत्मा और अविनाशीतत्त्व का सर्वांगीण विकास हो। इन शब्दों के साथ मैं एक बार पुन: आपको सप्रेम आशीर्वाद और राधास्वामी भेजता हूँ।

आपका फकीरमय
मानव

आवश्यक सूचनाएँ

वैसाखी का पुण्य उत्सव

हमेशा की तरह वैसाखी का पुण्य उत्सव इस साल भी मानवता मन्दिर होशियारपुर में धूम-धाम से मनाया जा रहा है। हजूर मानव दयाल जी महाराज तथा दूसरे आचार्यों के सत्संगों की अमृतवर्षा 13 अप्रैल प्रातः आठ बजे, दोपहर को 3 बजे तथा 14 अप्रैल को प्रातः आठ बजे मानवता मन्दिर में होगी। आप लोग अधिक से अधिक संख्या में आकर लाभ उठाएँ।

हमें बहुत ही खेद है कि मार्च वाले मानव मन्दिर में वैसाखी की सूचना न भेजने की बहुत ही भूल हो गई, जिसके लिए हम आपसे क्षमा माँगते हैं। दूसरी ग़लती यह हुई कि मार्च के मानव मन्दिर में ग़लती से मानवधाम की मीटिंग के लिए 21 अप्रैल की जगह 16 अप्रैल छप गया। इस त्रुटि के लिए हम आपसे क्षमा चाहते हैं? आपको अब सूचित किया जाता है कि 21 अप्रैल को प्रातः आठ बजे से दस बजे तक सालवान पब्लिक स्कूल पुराना राजेन्द्र नगर, नई देहली में परमसन्त मानव दयाल जी महाराज का सत्संग होगा। उसी ही दिन यानि कि 21 अप्रैल इतवार को मानवधाम में दोपहर के 1 बजे भण्डारा होगा और दोपहर के 3 बजे से पाँच बजे तक मानवधाम के फकीर सत्संग भवन में महाराज श्री का सत्संग होगा। आप मानवधाम में पहुँचने के लिए बस स्टेशन से मोदीनगर या मेरठ की बस पकड़ लीजिये। मोदी नगर तथा मुरादनगर से भी पहिले मुरादनगर से लगभग सात किलोमीटर पहिले दुहाई गाँव आता है। आप वहाँ उतर जाइये। फिर वापिस देहली की ओर अपना मुँह कर लीजिये करीब पौन किलोमीटर पर मानवधाम है बोर्ड लगा हुआ है। हमारे आदमी भी वहाँ खड़े होंगे। यदि आप देहली

से कार से आ रहे हैं तो 25 किलोमीटर की ईंट पर मानव-धाम का बोर्ड है उसको पार करके आगे चलिए फिर 26 किलोमीटर का पत्थर आयेगा। उससे आगे एक या डेढ़ फर्लांग चलिये आपको मानवधाम का बोर्ड दिखाई देगा बस अन्दर चले आइए। वहीं आपके फकीर भवन तथा शिव मन्दिर का निर्माण जारी है।

20 रात को देर से आने वाले सत्संगियों का सालवान स्कूल में रहने का प्रबन्ध होगा।

दूसरी सूचना यह है कि महाराज श्री 22 अप्रैल 1991 को विदेशों के दौरे पर जा रहे हैं। वह एक जगह तो रहते ही नहीं, इसलिये अनसे पत्र व्यवहार करना बहुत ही कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है। अतः सत्संगियों से अनुरोध है कि गुरुपूर्णिमा तक महाराज श्री को कोई पत्र न लिखें। वह गुरुपूर्णिमा से एक सप्ताह पहिले भारत में पहुँच जायेंगे। आप फिर उन्हें पत्र लिख सकते हैं। हाँ यदि 'मानव मन्दिर' पत्रिका के विषय में आपको कुछ लिखना है तो निम्नलिखित पते पर लिखें :—

श्री प्रेम प्रकाश शर्मा
प्रकाशन अधिकारी
मानव मन्दिर
मानवता मन्दिर सुतैहरी रोड, होशियारपुर (पंजाब)

एक सूचना यह है कि मानवता धर्म के आचार्यों की लिस्ट में बिलारी के श्री आचार्य मनमोहन गुप्ता का नाम देने में भूल हो गई। गुप्ता जी परम दयाल जी महाराज तथा हजूर मानव दयाल जी महाराज के बहुत बड़े कृपा-पात्र हैं।

एक सूचना यह है कि श्री हरिवंश शर्मा (बिलारी) के बहुत ही पुराने सत्संगी हैं महाराज परम दयाल जी की

उन पर तथा उनके परिवार पर विशेष कृपा थी हजूर मानव दयाल जी महाराज के भी वह कृपापात्र हैं। उन्होंने आठ वर्ष तक अपना घरबार छोड़कर, मानवता मन्दिर होशियार-पुर में रहकर, मैटाडोर को ड्राइव करके हजूर की जो सेवा की है उसकी मिसाल नहीं है। उन जैसा कुशल शरणागत ड्राइव करने वाला सत्संगी भविष्य में मिलना कठिन है। अब बुढ़ापे तथा कमज़ोरी के कारण वह स्थायी रूप से अपने परिवार के पास बिलारी चले गये हैं। महाराज श्री उनको आशीर्वाद भेज रहे हैं तथा सारा मानव परिवार उनके स्वास्थ्य की कामना करता है।

आवश्यक सूचना

हमारे लाखों सत्संगी हैं। हमारे मत में किसीसे कुछ माँगा नहीं जाता। परन्तु जब मानवधाम तथा अन्य अनेक मानवतामन्दिरों के भवनों का निर्माण जारी है, तो धन की आवश्यकता तो पड़ती है। पैसे के बगैर तो फकीर सत्संग भवन का पूरा होना सम्भव है नहीं। इसलिये बहुत सोच-समझकर यह अपील की गई थी कि यदि लाखों में से दस प्रतिशत लोग भी, हर वर्ष परम दयाल जी के जन्म-दिवस पर केवल एक सौ रुपया भी भेजें, तो हर वर्ष लाखों रुपये एकत्रित हो सकते हैं, जिससे निर्माण का काम रुकेगा नहीं। आज के ज़माने में साल में केवल एक बार सौ रुपया भेजना कोई कठिन काम नहीं। हमारे सरदार भाई-बहन तथा योरुप तथा अमेरिका में ईसाई तथा यहूदी लोग अपने धर्म के प्रचार के लिए अपनी आय का सवा प्रतिशत से लेकर दस प्रतिशत हिस्सा सदैव उनको देते रहते हैं, जिससे उनके विशाल एयर कण्डीशन इमारतों का निर्माण होता चला जा है। हमारे मत में भले ही माँगा नहीं जाता, फिर भी सोचना चाहिए कि मानव मन्दिर पत्रिका, लंगर,

फ्री डिस्पैन्सरी, हाई स्कूल का खर्चा आखिर कैसे चले? कभी इस विषय पर आपने सोचा है क्या? इतनी बार अपील करने पर भी अभी तक केवल लगभग एक हज़ार सत्संगियों ने ही आर्थिक सहयोग दिया है। हाँ कुछ ऐसे उदार सत्संगी भी हैं जो हर महीने कुछ न कुछ जयपुर, मानवता मन्दिर तथा मानवधाम में पैसे भेजते रहते हैं उनका पूरा मानव परिबार धन्यवाद करता है। हम यह नहीं चाहते कि कुछ ही व्यक्ति यह सहयोग दें। प्रत्येक मानवताधर्मी विशेषकर फकीर सत्संग भवन के निर्माण के लिए साल में एक बार सौ या पचास रुपये का सहयोग अवश्य दें। कभी-२ हँसी आती है कि लाखों सत्संगियों में से केवल एक हज़ार सत्संगियों ने ही इस अपील की ओर ध्यान दिया है। ऐसा लगता है कि आप लोग आलस्य कर रहे हैं। साल में एक बार—केवल एक ही बार, सौ रु० देना कोई मुश्किल बात नहीं है। हे मानवताधर्मियो! इस विषय पर ग़ौर करो अपना आर्थिक सहयोग शीघ्र से शीघ्र भेजने की कृपा करो। ऐसा न हो कि फकीर सत्संग भवन के काम को जो शीघ्रता से चल रहा है, फिर से धन के कारण बन्द कराना पड़े। आप अगर वास्तव में, गम्भीर हो जायें और आप में से केवल दस प्रतिशत लोग इस मिशन में अपना सहयोग दें तो भवन के निर्माण का काम कभी बन्द नहीं होगा। हमें बाहर वालों से धन की अपील करने की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी। आपका क्या विचार है? आपके पास यदि कुछ सुझाव हैं तो दीजिये, क्योंकि फकीर सत्संग भवन आपका ही है और आपके ही अनुरोध से बनाया जा रहा है। आचार्य के. पी. वर्मा, श्री रिशी प्रकाश जी गुप्ता, श्री यशपाल भाटिया, श्री एस. डी. शर्मा तथा नवयुवक उत्साही श्री पवन शर्मा के दिन-रात के परिश्रम के फलस्वरूप फकीर सत्संग

मानवधाम में खड़ा हो गया है हम इनके बहुत ही आभारी हैं साथ ही साथ आभार तो आप सबका है, जिन्होंने आर्थिक सहयोग दिया, जिसके लिए हम आपको धन्यवाद भी नहीं दे सकते, क्योंकि मन्दिर आपका ही है। आपकी अपनी चीज़ के लिए आपको ही धन्यवाद कैसा ? ऐसे लगता है कि सौ रुपये भेजना आपके लिए कठिन नहीं है, कठिनता है आलस्य की। यदि आप वैसाखी पर मानवता मन्दिर होशियारपुर में आ रहे हैं या उससे पहिले भी आ रहे हैं या बाद में भी, आप चाचार्य शब्दानन्द जी को धनराशि देकर उसी समय रसीद ले सकते हैं। यदि आप देहली में सालवान स्कूल या मानवधाम में आ रहे हैं तो आचार्य श्री एस. डी. शर्मा को पैसे देकर रसीद कटवा सकते हैं। साल में एक बार तो सौ रुपया गुरु महाराज सन्तों के सन्त परम दयाल फकीर चन्द जी महाराज के फकीर सत्संग भवन के लिए देना ही चाहिए यह हमारी appeal या अनुरोध है कोई ज़बरदस्ती नहीं।

पैसा तो अमीरों से भी इकट्ठा किया जा सकता है परन्तु हमारे गुरुदेव महाराज फकीर चन्द जी महाराज के कथनानुसार पैसा उससे लेना चाहिए जिसमें घमण्ड नहीं हो। हमें लाखों रुपये देने वाले घमण्डी लोगों के पैसे से अपने ही मानव परिवार के सदस्यों से सौ रुपये ही पर्याप्त हैं, क्योंकि वह प्रेम से दिये जाते हैं और वह मानव परिवार के सदस्य के ही हैं।

क्योंकि हज़ारों व्यक्तियों के हर महीने पैसे आने की सम्भावना रहती है। इसलिये एक तो postage बहुत महंगी होने के कारण और दूसरा स्थायी क्लर्क न होने के कारण, सबकी रसीदें काट कर भेजना असम्भव है। रसीदें काटी -एक पैसे की भी जाती हैं, परन्तु उनको भेजा नहीं को फ़ाइल में जमा किया जा रहा है। जिस सत्संगी

को पक्की रसीद चाहिए, वह मोदीनगर में सेक्रेटरी साहिब को लिख दें। उनकी रसीद भेज दी जायेगी। आपकी रसीदें पाँच या दस साल तक सुरक्षित रखी जायेंगी। जब चाहें मँगा सकते हैं। हमारे निःस्वार्थ सेवा करने वाले सत्संगी बहुत ही ईमानदार हैं। आपके एक-एक पैसे का हिसाब नियमित रूप से रखा जाता है। कहीं किसी प्रकार की कोई गड़बड़ी नहीं है। आपके ड्राफ्ट या चैक या मनीआर्डर आने पर आपको post card द्वारा सूचित उसी समय कर दिया जाता है कि आपकी धनराशि मिल गई ताकि आपको यह मालूम हो जाय। जब आफिस बन जायेगा तब सब कार्य-वाही उचित रूप से होगी। अभी हम आपसे सहयोग चाहते हैं हमारा हाथ बटाइये अपना सुझाव भेजिये तथा कमियों के लिए क्षमा कीजिये।

हाँ एक बात मैं कहना भूल ही गया। पैसे की अपील करने के बाद कुछ उदार सत्संगियों ने मानवता मन्दिर जयपुर तथा मानवधाम को सौ रुपया प्रति वर्ष भेजने के स्थान पर 100 रु० प्रति मास भेजना शुरू कर दिया है। उनका कहना है कि 100 रु० महीना भेजने से उन्हें कम से म हज़ारों रुपये महीने में फायदा हो रहा है। ऐसे उदार द्वावान् सत्संगियों का हम आभार प्रकट करते हैं और हमें लोगों से प्रेरणा लेनी चाहिए।

हम मानवधाम कालोनी के अपने परमप्रिय सहनशील ा धैर्यवान् plot holders की सहनशीलता की प्रशंसा किये ि नहीं रह सकते, जिन्होंने आज तक हमारे पूरा इन्तज़ाम होने के कारण तथा उचित रूप से पत्र व्यवहार न होने ावजूद भी, हमसे किसी प्रकार की शिकायत नहीं की। ज़ूर दाता दयाल जी महाराज कहा करते थे, "शिकायत रना बहुत बुरी बात है। शिकायत शब्द को शब्द-कोष से

निकाल ही देना चाहिए।" हमारे प्लाट होल्डर्ज़ वास्तव
ही, दाता दयाल जी के पद चिन्हों पर चल रहे हैं। हम
सत्संगियों के आभारी हैं। ऐसे ही लोग मानवता धर्म
सच्चे पुजारी कहे जाने चाहिएँ। ऐसे ही लोगों के
विचारों से मानवधाम की कालोनी सम्पूर्ण विश्व के
एक मिसाल रखेगी। सोचिए कितनी सुन्दर होगी काल

हम अपने प्यारे प्लाट होल्डर्ज़ को सूचित करते
भण्डारे के फ़ौरन पश्चात् दोपहर के दो बजे मानवधा
फ़कीर सत्संग भवन में (तारीख 21 अप्रैल को) प्लाटहो
की मीटिंग होगी, जिसमें कालोनी तथा प्लाटों के सम्बन
बहुत आवश्यक निर्णय लिये जायेंगे और रजिस्ट्री की
बातचीत होगी। सभी प्लाट होल्डर्ज़ की उपस्थिति अनिव
है। धन्यवाद।

कुछ वर्ष पहिले सत्संगियों ने मैटाडोर को ड्राइव कर
की सेवाएँ अर्पित करने को कहा था। उनके नाम याद नहीं
हैं। अब सत्संगी भाइयों को यह सूचित किया जाता है कि
जो भी ड्राइव करने की ज़िम्मेवारी लेना चाहते हैं वह
आचार्य शब्दानन्द जी को अर्ज़ी भेज दें। मन्दिर बहुत
तो दे नहीं सकता हाँ ड्राइव करने वाले की निःस्वार्थ सेव
लिए उसे 500 रुपये महीना सेवादारी अलाऊन्स, रहने
कमरा तथा भोजन मिलेगा।

सेक्रेटरी :
मानवता मन्दिर, होशियार